MINOR RESEARCH PROJECT

(HINDI)

समकालीन हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आदिवासी जनजीवन

(Samakalin Hindi Sahitya Ke Paripreksh
Me Adiwashi Janjivan)

File No . 23 – 1143/14 (WRO) 20/02/2015

Sponsored by

University Grants Commission,

New Delhi

(Western Regional Office, Pune)

Principal Investigator

Dr. Pandit Ghenappa Banne

Department of Hindi

Bharat Mahavidyalay, Jeur (C.Rly)

Tal – Karmala, Dist – Solapur

February – 2017

Title of the Project . समकालीन हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आदिवासी जनजीवन

(Samakalin Hindi Sahitya Ke Paripreksh Me Adiwashi Janjivan)

Principal -DR.PANDIT GHENAPPA BANNE

Investigator

Number and Date - File No . 23 – 1143/14 (WRO) 20/02/2015

of Sanction Letter

Amount Granted - 2,30,000/-

Duration of Project - 2 Years

प्रथम अध्याय

आदिवासी : अर्थ, परिभाषा, स्वरूप और व्याप्ति

प्रस्तावना –

संसार में समस्त देशों में आदिवासी निवास करते हैं। यह देश के मूल एवं प्राचीनतम निवासी है। ये प्रारंभ से ही दूरस्थ, जंगलों एवं निर्जन स्थानों पर निवास करते आए हैं। आदिवासी जंगली परिस्थितियों में अपना जीवनयापन करते दिखाई देते हैं। विश्व के अधिकांश देशों में आदिवासी निवास करते हैं। विश्व में सबसे ज्यादा कबीले अफ्रीका में है। आदिवासी एक सामान्य प्रकार का समूह है, जिनके सदस्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं और युद्ध जैसे सामान्य उद्देश्यों के लिए या शत्रु का सामना करने के लिए साथ मिलकर कार्य करते हैं। इनकी अपनी एक विशिष्ट भाषा, संस्कृति, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था और परंपराएँ होती है।

आदिवासी साहित्य, उन बन – जंगलों में रहने वंचितों का साहित्य है। आदिवासी साहित्य के माध्यम से देश तथा विश्व की आदिवासी भावनाओं को समझने तथा उनसे संबंध स्थापित कर इन समूहों को दूर – दूर तक ले जाना ही इस साहित्य का महत्व है।

आदिवासी का अर्थ यह है कि यह एक ऐसी स्थानिय जनजातीय समूहों का समुदाय है जो एक सामान्य क्षेत्र में निवास करते हैं, एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं, इनकी एक सामान्य संस्कृति होती है। भारतीय समाज को आधुनिक समाज बनाने में इन आदिवासी जनजातियों का महत्वपूर्ण योगदान है। गाँवों में रहन – सहन की अव्यवस्था, बिजली – पानी की अव्यवस्था, कुप्रथाएँ, अंधविश्वास, छल – कपट, चापलूसी, धोखेबाजी, ऊँच – नीच आदि का व्यापक प्रभाव बना हुआ है। आदिवासी हमारे देश के प्राचीन और मूल निवासी है।

1.1 आदिवासी का अर्थ –

'आदि' याने पहला आरंभ तो 'आदिम' का अरबी अर्थ मनुष्य का आदि

प्रजापति, मनु के समांतर। आदिवासी याने किसी प्रदेश या सत्य के मूल निवासी''[1]

प्रो.गिलानी के अनुसार – ''एक विशिष्ट भूप्रदेश में रहनेवाला, समान बोली बोलनेवाला, अक्षरों की पहचान न होनेवाला, समूह, गुट 'आदिवासी समाज' कहलाता है।''[2] **डॉ.विवेकी राय के अनुसार** –''पिछडे, अंचलों, पहाड़ो, वनों के निवासियों को आदिम – आदिवासी माना है।''[3] आदिम जातियाँ आदिवासी या वनवासी नाम से पहचानी जाती है।

आदिम जन – जीवन –

धुमंतू जीवन, अल्प धुमंतू , निरंतर धुमंतू आदि। आदिम जो अक्सर गाँव या बस्ती को छोड़कर जीवन – निर्वाह के लिए दूरस्थ घने जंगलों के बीच रहा करते हैं। शिकार कर अपना गुजारा करना या फिर लकड़ी वनौषाधियों, शहद आदि इकठ्ठा कर ग्रामों, शहरों में बेचना इनका व्यवसाय होता है। नगर, ग्राम, करने के संपर्क से दूर इन आदिम जातियों की वेशभूषा, केशभूषा, अलंकार, संस्कृति एकदम भिन्न प्रकार की होती है।

आदिवासियों के लिए आदिम जन, मूलनिवासी, गिरिजन, पहाड़ी, वनजाति, वनवासी आदि नामों से बोली जाती है अंग्रेजी में इसको 'Tribal' कहा जाता है। 'आदिवासी' शब्द से ताप्तर्य है – आदिवासी बनवासी या जंगली आदिम भी कहते हैं। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जनजाति संबोधित किया गया है। उन्हें सारा जीवन अभावों से बिताना पड़ता है।

1.2 आदिवासी की परिभाषा –

प्रो सत्यव्रत सिद्धातालंकार :–

अपनी पुस्तक भारत की जनजातियाँ तथा संस्थाएँ में यह विचार व्यक्त किया है कि – ''समूहों की शृंखला परिणाम से जब बढ़ती जाता है तब उसका अन्त राष्ट्र में होता है। समूहों की यह क्रमिक वृद्धि आदिम जातियों में पायी जाती है। जनजाति को हम जनजाति कहते हैं। जनजाति एक ऐसे समूह का नाम है जो आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होता है, समान भाषा बोलता है और जब किसी बाहर के शत्रु का सामना करना होता है, तब इस समूह के सब लोग एक हो जाते हैं।''[4]

इम्पीरियल गजेटियर :

''एक आदिम जाति परिवारों का एक वह समूह है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं तथा एक सामान्य क्षेत्र में या तो वास्तव में रहते हैं या अपने को उसी क्षेत्र से संबंधित मानत हैं तथा यह समूह अंतर्विवाही भी होते हैं।''[5]

जे.एल.गिलिन और जे.पी.गिलिन :–

"Any collection of preliterature local groups which occupies a common general territory, speals a common language and practices a common culture is a tribe."[6]

अर्थात् जनजाति किसी भी ऐसे स्थानीय समुदायों के समूह को कहा जाता है, जो एक सामान्य भू – भाग पर निवास करता हो, एक सामान्य भाषा बोलता हो और सामान्य संस्कृति का व्यवहार करता हो।

जैकब्स और स्टर्न :–

"A cluster of village communities which share a common territory language a culture and are a conomucallay interwoven is often also designated tribe"[7]

अर्थात् एक ऐसा ग्रामीण समुदाय या ग्रामीण का समूह है, जिसकी सामान्य भूमि हो, सामान्य भाषा हो, समान्य सांस्कृतिक परंपरा हो, और जिस समुदाय का जीवन आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे के साथ ओत – प्रोत हो, वह जनजाति कहलाता है।

हिंदी विश्वकोश :–

''आदिवासी शब्द को प्रयोग किसी क्षेत्र के मूल निवासियों के लिए किया जाना चाहिए, परंतु संसार के विभिन्न भूभागों जहाँ अलग – अलग धाराओं में अलग – अलग क्षेत्रों से आकर लोग बसे हों उस विशिष्ट भाग के प्राचीनमत अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ इंडियन अमरीका के आदिवासी कहे जाते हैं और प्राचीन साहित्य में दस्यु, निषद आदि के रूप में जिन विभिन्न प्रजातीय समूहों का उल्लेख किया जाता है उसके वंशज भारत में आदिवासी माने जाते हैं।''[8]

आदिवासी समाज के लोग प्रायः जंगलो, पहाड़ों में रहते हैं। नए नए

अनुसंधानों, भौतिक संसाधनों से वंचित आदिवासी अपनी उत्सव, परंपरा, त्यौहार, रीति – रिवाज को कायम रखते हैं। आदिवासी समाज देश की मूलधारी से अलग किसी क्षेत्र विशेष में अपनी पैतृक परंपराओं की संभाले हुए विशिष्ट प्रकार की जीवन शैली को अपनाते हैं।

डॉ.डी.एन.मुजुमदार –

''एक मात्र सामायिक जाति, एक ही भू – प्रदेश में वास्तव्य करनेवाले एक ही भाषा बोलनेवाले, विवाह, व्यवसाय आदि में एक ही नियम का पालन करनेवाले पारस्परिक संबंध और व्यवहार के बारे में पूर्वानुभव पर आधारित निश्चित नियमों का पालन करनेवाले पारिवारिक समूह आदिवासी जाति है।''[9]

शिलॉग परिषद 1952 –

''एक समान भाषा का प्रयोग करनेवाले, एक ही मूल पूर्वजों से उत्पन्न, विशिष्ट भू – प्रदेश में वास्तव्य करनेवाले, तंत्रशास्त्रीय दृष्टि से पिछडे हुए निरक्षर, खून के रिश्तों पर आधारित सामाजिक, राजकीय, राजनीति आदि का प्रामाणिक पालन करनेवाले एकजिन्सी गुट यानी आदिवासी जाति है।''[10]

आदिवासी सामान्य कोटि का एक सामाजिक समूह है, जिनके सदस्य साधारण भाषा बोलते हैं। उनकी अपनी शासन – प्रणाली होती है। बाहरी आक्रमण की स्थिति में इनमें एकता बनी रहती है।

एडम्सन होबल :–

''जनजाति एक सामाजिक समुदाय है जो विशिष्ट भाषा बोलता है, जिसकी एक विशिष्ट संस्कृति होती है, जो इस जनजाति को अन्य जनजातियों से पृथक करती है। जनजाति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह राजनैतिकता के आधार पर संगठित हो।''[11]

1.3 आदिवासी स्वरूप और व्याप्ति :–

वनवासियों का स्थान हमारे सांस्कृतिक धरोहर में बहुत ऊँचा है। हमारे देश के विभिन्न राज्यों के जनजातीय इलाकों में प्रगौतिहासिक काल से आज तक इनके वंशज प्रकृति की गोद में खेल रहे हैं। गोंड, कोरकू, कोल, भील, कोरबा, उरांव, सवरा आदि कुछ और समूहों ने अपनी संस्कृति और साहित्य को सुरक्षित रखा है। इनकी नृत्य प्रणाली, वेशभूषा, केश रचना,अलंकार,

अस्त्र – शस्त्र और यहाँ तक कि रहन – सहन कलापूर्ण है।

आज आदिवासियों में चेतना जगी है। वह नई – नई विचारधाराओं और क्रांतियों से परिचित हुआ है। अपने हकों के अस्तित्व की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव व अन्याय का बोध भी जगा है। यह भेदभाव उसके साहित्य में झलक रहा है। आज अपनी समस्याओं को हिंदी की कलम से भी व्यक्त करने लगे हैं तो साथ ही अपनी संस्कृति, भाषा और अपनी उदात्त जीवन शैली की अभिव्यक्ति से हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं।

आदिवासियों में अपनी संस्कृति, अपनी भाषा, अपना इतिहास, अपना भूगोल सब जानते, सबको पड़ताल करने और उसे इस बाहय जगत से रू – ब – रू कराने की चेतना भी उनमें उभरी है।

जंगल, पहाड़, पशु – पक्षी, हरी – भरी घटियाँ और उनके बीच अपने अधिकारो को लेकर संघर्ष करते आदिवासी है। कल – कारखानों की चिमनियों से निकलता धुँआ उनके जीवन और सांस्कृतिक विरासत पर आधुनिक जीवन शैली के रंग – रोगन चढ़ाता या उनके अस्तित्व को पूरी तरह खारिज कर देने के मंसूबे बांधता उनके जल – जंगल और जमीनों पर नजरे गड़ाता सरकार और कार्पोरेट इनकी समस्या है। इनके अस्तित्व पर खतरा बन कर लटक रहा है। आदिवासियों को हमेशा विकसित और प्रस्थापित समाज के रणनीतियों ने हाशिये में रखने का षड़यंत्र रचा है। आदिवासी समाज के अंदर व्याप्त अंधविश्वास जनित धारणाएँ और नशाखोरी का व्यसन उनके विकास में अवरोधक बन कर खड़े हैं।

आदिवासी पहाड़, जंगल, वन में रहनेवाली जाति है। आज की पंरपरागत जीवनयापन करनेवाली प्रकृति की संतान अपनी संस्कृति की रक्षा कर रही है। अंधश्रद्धा, अंधविश्वास अज्ञानी आदिवासी का आज भी शोषण हो रहा है। अपनी अस्मिता की रक्षा करनेवाली यह जनजाति संघर्षप्रिय, विद्रोही भी है। आजादी के पश्चात आज भी हिन्दुस्तान में ऐसी अनेक जन – जातियाँ है जिनका किसी भी रुप में विकास नहीं हुआ है। सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं आर्थिक स्तर पर ये जनजातियाँ अभी भी पिछड़ी है। बोड़ा, संथाल, कोकरू, करनट, कबूतरा, वारली, बाहुरी, गुलगुलिया, मोची, भील, नागा, कोल, धारूँ,

उरॉव, गोंड ऐसी लगभग 170 के आसपास जन जातियाँ हिंदुस्तान में आदिवासी के रूप में मौजूद है।

जंगल मानव जीवन के अस्तित्व, विकास, प्रगति और उत्तम स्वास्थ्य के लिए अपरिहार्य है। परंतु आज विकास की विभिन्न परियोजनाओं, उद्योगीकीकरण, आर्थिक वैज्ञानिक विकास आदि के नाम पर जंगलों की कटाई हो रही है। धीरे – धीरे वन क्षेत्र कम होता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप जहाँ बाढ़, सूखा, भूस्खलन जैसी आपदाएँ उभरी है। वायुमंडल में कार्बनडाई ऑक्साइड गैस बढ़ती जा रही है। जंगलों की कटाई से देश का हर नागरिक चाहे वह कहीं का निवासी हो प्रभावित हो रहा है। लेकिन सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। आदिवासियों पर उनका जीवन अस्तित्व ही संकट में है।

सामंती और पूँजीवादी शक्तियों से लड़ने का हथियार शिक्षा है। यह सामाजिक और आर्थिक विकास की रीढ़ है। आदिवासियों को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए उनके जीवन में शिक्षा की ज्योत जलानी है।

1.4 भारत में आदिवासी जाति का स्थान एवं क्षेत्र :–

भारत में आदिवासी जाति अनेक प्रदेशों में दिखाई देती है। प्रादेशिक दृष्टि से विभाजन इस प्रकार है –

ईशान्य भारत :–

ईशान्य भारत में आसाम, नागालँड, त्रिपुरा, मेघालय, मणिपुर आदि राज्यों में प्रमुख रूप से मंगोत्र वंशीय जाति के लोगों का वास्तव्य है। नागा, गारो, सीझी, मिझो, बोडो, उफला, कुकी, अंगामी, लुशाई, मुरंग, खमीर, दिआंग, भिनमांग आदि आदिवासी जन – जाति है।

उत्तर भारत :–

उत्तर भारत में काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में गुज्जर, बकरवाला, लहौल, गड्डी, भोटिया आदि आदिवासी जाति का वास्तव्य है।

मध्य एवं पूर्व भारत :–

मध्य एवं पूर्व भारत में महाराष्ट्र, राज्यस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, पं. बंगाल, छत्तीसगड, झारखंड, बिहार और उड़िसा आदि राज्यों में भील, गोंड,

तोड़ा, कोरकू , संथाल, कोली, कोरवा, ठाकूर, परधान, हो, चेंचू, उराँव, बिरहारे, सबर, ओराव, बैगा, बंजारा, वारली आदि आदिवासी जाति का वास्तव्य है।

दक्षिण भारत :–

दक्षिण भारत में आंध्र प्रदेश, तमिल और केरल आदि राज्यों में गोंड, तोड़ा, चेंचु, कोया, थेनाडी, कूर्ग, मुथवन, पुलियन, उरूला, कोलाम, इरवाल, बुशवन, मलपंडरम, पवियन, कहार, कोरग आदि आदिवासी जातियों का वास्तव्य है।

अंदमान – निकोबार द्वीप समूह :–

इन द्वीप समूह में अंदमानी, निकोबारी, सेटीनेली, ओंग और शोपन आदि आदिवासी जाति का वास्तव है।

येरुकला जनजाति को अलग – अलग राज्यों में अलग – अलग नाम से पहचाने जाते हैं। महाराष्ट्र और तेलंगना के कुछ प्रांतों में कैकाडी, केरल में सिद्धनार, पांडेचेरी में कट्टनायर के नामों से जाने जाते हैं। इसी प्रकार तमिलनाडु में कुरवन, कर्नाटक में कोरमा नाम से जाने जाते हैं।

दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, अंदमान निकोबार द्वीप समूह आदि राज्यों तथा केंद्रशासित प्रदेशों में विशेषतः टोडा, लम्बाडा, चेंचु, ओंग, निकोबारी तथा कुरुम्बा जनजातियाँ निवास करती है। भौगोलिक दृष्टि से वे अलग – अलग राज्यों में एक दूसरे से भले ही दूर हो, किंतु उनकी भाषा या बोली उन्हें एकसूत्र में बाँधे रखती है।

1.5 आदिवासी विषयक दृष्टिकोण :–

आदिवासी संस्कृति के अभ्यास करनेवाले डॉ.गोविंद गोरे जी कहते हैं कि, जो वन में अर्धांग नग्न अवस्था में रहता, जो नरभक्षक, बिना पकाकर गोश्त खाता तथा आँखेट करनेवाले लोगों को आदिवासी कहते हैं। उसी समय आदिवासी यह उनका नाम नहीं था। आदिवासी शबरी तथा वाल्या कोली इनके वंशज माने गए। इसलिए वे दुष्ट, दुराचारी तथा क्रूर माने गये। महाभारत, रामायण कथा के कालखंड से उन्हें कौए से अधिक काले, धरती के पापी लोग, बौने, जिसका नाक दब गया हो, लुटेरों, राक्षस, नरभक्ष आदि नाम से उसे पहचानते थे। प्रतिभाराय के अनुसार – ''सभ्यता न वेशभूषा है, न पोषाक।

संस्कृति पाउड़र, टीका, सरकारी चाकरी, वेतन नहीं है। दोपहर के भोजन में गुड़ और दलिया तथा उबली दाल के लिए कतार बांध स्कूल आना शिक्षा नहीं। खाद, बीज, भैंसा, मुर्गी पालना प्रगति नहीं है, आदमी सभ्यता को बनाता है या सभ्यता आदमी को बनाती है?''[12] अशैक्षिक, अविकसित, अंधश्रद्धा, रूढ़ि – प्रथा तथा संस्कृति के साथ चिपककर रहनेवाला, दुर्गम स्थानों में जीवनयापन करनेवाला भारतीय सुपुत्र आदिवासी है।

1.6 भारतीय समाजव्यवस्था और आदिवासी –

हिंदुस्तान में आर्य जाति के आगमन में पहले इसके मूल निवासी आदिवासी थे। इस धरती के आदिम पुत्र थे। इस जाति के लोगों की संस्कृति सुजलाम् सुफलाम् थी। उनके वैयक्तिक और सांस्कृतिक तत्वज्ञान भी था। बाद में इ.स.पूर्व तीन हजार वर्ष आर्य लोगों ने भारत में प्रवेश किया। वहाँ के मूल निवासी जो अनार्य है उनके बीच में संघर्ष होने लगा। उसमें अनार्य (आदिवासी) लोगों का पराभव हुआ। प्र.रा.देशमुख कहते हैं कि, ''जब भारत देश में आर्य लोग आ गए और यहाँ अपने झोपड़ी तैयार की। साथ ही अपने लोगों की संख्या और शस्त्र में वृद्धि की। अर्थात् लोगों की संख्या और शस्त्रों के बल पर यहाँ के लोगों की अनाज, गौएँ, खेती और तालाब आदि पर अपना कब्जा किया और यहाँ के लोगों की ज्यादा मात्रा में कत्ल की। उसी जगह पर अपनी सत्ता प्रस्थापित करके यहाँ के मूल निवासी लोगों का ह्रास हुआ।''[13]

आज आदिवासी लोग भारत के अनेक समुदायों में शामिल है। आदिवासी देश के मूल निवासी थे। अपने बाद में आनेवाली जातियों की प्रताड़ना के शिकार बने। अधिक समय तक वे बनों एवं पर्वतों की ओट में रहकर त्रासदी जीवन बिताते रहे। इस तरह का जीवन बिहार के संथाल और गौण्ड, मध्य प्रदेश के मूरिया, भील और गोण्ड, गुजरात के दुबला और चौधरा आदि जागीरदारी अत्याचार के शिकार रहे हैं। गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास एवं बेरोजगारी आदि आदिवासियों को कई मुसीबतें झेलनी पड़ती है। विवाह, मृत्युभोज, देवी – देवताओं की मनौती आदि पर अनावश्यक खर्च करने की प्रथा से हर समय गाँव के सासूकार के कर्जदार बने रहते हैं।

आदिवासी अर्थ व्यवस्था वन प्रधान थी। स्वाधीनता के बाद जंगलों

को कटाई में तेजी आयी। आज 10 – 12 प्रतिशत भूमि में ही जंगल है। सूखा, अकाल एवं मुश्किल के वर्षों में जलाऊ लकड़ी, घास चारा, वन उपज पर ही निर्भरता बढ़ जाती है। आदिवासी आज भी जंगल की नीजि संपत्ति समझता है।

शिक्षा के क्षेत्र में आम आदिवासी ने खोया ही है। आदिवासी शिक्षा में महिलाएँ बहुत अधिक उपेक्षित है। महिला शिक्षा का प्रतीक 2 प्रतिशत से अधिक नहीं है। पढ़े – लिखे आदिवासियों की तुलना में रोजगार के अवसर कम है। दक्षिणी राजस्थान के माही बजाज सागर, जाखम, कड़ाणा, सोम का गहर बांध ने लाखों आदिवासी परिवारों को बेघर कर दिया है। इनकी जमीनें डूब में आयी, पूँजी पुराने कर्जों को चुकाने, शादी ब्याह रचाने, काट्या (मृत्युभोज) द्वारा चले आ रहे सामाजिक दायित्वों के निर्वाह पूरा करने में अनावश्यक खर्च आज कुल मिलाकर इनका जीवन – निर्वाह मात्र मजदूरी पर होता है।

राष्ट्रीय राजमार्गो के निर्माण ने आदिवासी संस्कृति को कुत्सित बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। राजमार्गों की 'ढाबा संस्कृति' ने आदिवासी क्षेत्रों के किनारे – किनारे यौन शोषण का खुला प्रदर्शन किया है। आदिवासियों की गरीबी और मुक्त यौन संबंधों का समाज में अविवाहित बालाओं की नादानी की छूट का बाहरी लोगों द्वारा किया जा रहा क्रूर दोहन प्रमुख है। ऐसी हालात ने एड्स जैसी बीमारी की शिकार हो चुकी है। एक ओर अविवाहित लड़की के स्वच्छंद संबंधों पर समाज में परहेज नहीं तो दूसरी ओर विवाहिता के साथ किसी प्रकार की बदसलूकी, परिवार के बाहर यौन संबंध गाँवों के बीच संघर्ष के कारण बन जाते हैं।

आदिवासी जमीन को लेकर आज बड़ी मुसीबत है। उनके कब्जे में वैसे ही जमीन बहुत कम हुआ करती है। खेती की जमीन के छोटे – छोटे होने के कारण पीढ़ी दर पीढ़ी विभाजन हो रहा है। खेती योग्य भूमि की कमी हो गई है।

उत्सवों, मेलों या जंगलों में पशु चराते समय गराशिया युवक – युवतियों के आपस में प्रेमाचार हो जाता है, जब आगे जाकर दोनों विवाह बंधन में बँध जाते हैं। ऐसी स्थिति में विवाह के कोई रीति – रिवाज नहीं होते। युवक जंगल में ही युवती के हाथ लगा देता है। और घर आकर अपने पिता से कह

देता है कि अमुक लड़की के हाथ लगाकर वचन दिया है। युवक का पिता कन्या के पिता को इसकी जानकारी देते हुए अन्यत्र कन्या का विवाह पक्का नहीं करने का अभिमत पक्का कर पंचो के साथ छापा तय करके शुभ मुहुर्त निकलवा कर, नये कपड़े पहना कर लड़की – लड़के को अपने घर से ही बिदा कर देते हैं। इसे विवाह हुआ ऐसा समझ लिया जाता है।

आज की ज्वलंत समस्याओं में आदिवासी विकास की उपलब्धियाँ प्राप्त कर चुके हैं। बदलते समय के अनुसार कुछ आदिवासी नौकरी में आरक्षण के परिणाम स्वरुप सरकारी तथा सार्वजनिक उपक्रमों में प्रतिष्ठित है एवं पूर्ण रुप से आनंदमय है। जंगल का संरक्षण, उसका विकास और रख रखाव आदिवासियों के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है जो इनके सहयोग एवं भागीदारी के बिना नहीं हो सकता है। बदलती परिस्थिति के अनुसार जंगल में लाभ की अपेक्षा जंगल के पर्यावरण का संतुलित बनाये रखने पर अधिक जोर देना चाहिए।

आदिवासी जंगलों या पहाड़ों में रहते हैं या मैदानों में। शोषण, गरीबी, निरक्षरता और पिछड़ापन इनके जीवन के अंग रहे हैं। आदिवासी समूह जैसे भील, मीणा, गराशिया, डामोर आदि विभिन्न बसावटों में देखे जाते हैं। जैसे पाल के आदिवासी, बिखरे गाँवों एवं टेकरियों एवं पास के जुड़े खेतों पर आवासित है।

1.7 आदिवासी आंदोलन :–

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में सर्वप्रथम आदिवासी लोगों ने अपना बलिदान दिया है। राष्ट्रभक्ति से प्रेरित आदिवासी स्वाधीनता के आंदोलन में पीछे नहीं थे। उनके पास बहुत बड़ा त्याग, तपश्चर्या, राष्ट्रभक्ति एवं निस्वार्थ देशसेवा आज भी उनके पास ओत – प्रोत भरी हुई है। छत्रपति शिवाजी महाराज को राज्य निर्माण में मदद करनेवाले सभी मावले आदिवासी ही थे। भारत देश पर आक्रमण करनेवाले अंग्रेजों के विरोध में विद्रोह करनेवाले पहले आदिवासी ही है। राजस्थान में वाला भील, गुजरात का वनवासी संत, केरला का पांडू, आंध्र का राजू, उड़िसा का भगत, नागा की राणी माँ, मेघालय का संगमा, महाराष्ट्र का नागू कातकरी, शिवराम लोहार, उमाजी नाईक, देवजी राऊत आदि का स्थान

सर्वश्रेष्ठ है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हजारों वनवासियों ने सर्वस्व निछावर किया। क्रांतिसूर्य बिरसा मुंडा इसका प्रेरणा स्त्रोत था। आदिवासियों को संगठित करके अंग्रेजों की शोषण नीति का विरोध किया, 25 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई। 1828 में उरांव, मुंडा हो, चेरो आदिवासियों ने वीर बंधु भगत के नेतृत्व में छोटा नागपुर में अंग्रेजों के साथ संघर्ष किया। 1852 में युद्ध में वे शहीद हो गए।

1838 में गुजरात में नाटकों का संघर्ष, 1839 में असम में खम्पती संघर्ष, 1842 में बस्तर के गोंडो द्वारा कैप्टन ब्लंट की हार देशभक्ति की मिसाल ही है। 1846 में गुजरात में कुँवर जीवा भिल का विद्रोह, 1855 में बिहार की संथाल क्रांति, 1858 गुजरात में नाइकों की युद्ध नीति, 1879 नागा संघर्ष, 1872 कोया युद्ध, 1889 मुश्रओं का मणिपुर संघर्ष, 1900 बिरसा मुंडा का बलिदान, 1911 बस्तर का संघर्ष, 1942 उड़िसा में लक्ष्मण नायक का संघर्ष, 1942 – 45 अंदमान में जापानी सेना के खिलाफ विद्रोह आदि प्रमुख घटनाओं से यह स्पष्ट होता है, पूरे देश में विभिन्न प्रांतों में विभिन्न कालों में अंग्रेजों शोषण नीति के खिलाफ आदिवासियों ने संघर्ष किया है। जमीन और जंगल पर जब – जब आक्रमण हुए तब आदिवासी भड़क उठा। बिरसा का आंदोलन, कोल विद्रोह का आंदोलन इसका प्रमाण है।

भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन में आदिवासी लोगों ने अपने जान की परवाह न करते हुए आजादी की शुरूआत प्रथम की थी। उन्होंने निस्वार्थ भाव से देश की सेवा की है। आदिवासी सच्चा देश का सपूत है। ''आदिवासी इतिहास की कई विशेषताएँ हमारे सामने हैं। आदिवासियों का इतिहास सत्ता और राजपाट के बदलने का साम्राज्यवादी व सामंती इतिहास नहीं है। यह शोषण के विरूद्ध, जीवन के लिए, आजादी के लिए लगातार किए जानेवाले संघर्ष का इतिहास है।''[14]

निष्कर्ष :–

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारत देश बहुजाति – बहुधर्मी जनों की भूमि है। आदिवासी उसका संतान है। आदिवासी उसे कहते हैं जो पहला निवासी हो, विशिष्ट बोली, संस्कृति, अविकसित, मूलनिवासी, आदिवासी

है। विशिष्ट जीवन शैली जीनेवाला, जंगलों, वनों के सपूत, परंपरागत व्यवसाय, वनों पर जीविका, घोटुल, गुदना आदि विशेषताएँ हैं। जंगल और जमीन उनकी संपत्ति है। अज्ञानी, अंधश्रध्दा, प्रगति से दूर आदिवासी है। आदिवासी जाति, जंगल, घाटियाँ, पर्वत का परस्पर संबंध है। आदिवासी समाज छोटी बस्ती में, झोपड़ी में रहनेवाला अज्ञानी, अर्धनग्न, शोषित, जंगलों पर निर्भर, अप्रगत व्यवसाय करनेवाला है। जंगल का राजा आदिवासी है।

जंगल के दावेदार, वनों के जानकार, प्रकृति की संतान, मूलनिवासी आदिवासी की जनसंस्कृति भारतीय संस्कृति की आत्मा है। प्रत्येक आदिवासी की अपनी निजी विशेषताएँ होती है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर इनकी विशेषताएँ अलग – अलग है। जनजातियों की अनेक संज्ञाएँ है। जैसे आदिवासी, वन्यजाति, वनवासी, आदिमजाति आदि। इनमें सबसे प्रचलित संज्ञा जनजाति या आदिवासी है।

जंगल का राजा आदिवासी है। प्रकृति की गोद में पलने वाला वनपुत्र है। आज सरकारी विकास योजना के कारण जंगल कटाई, खानदान, बिजली सयंत्र, नहर, तालाब निर्माण के कारण आदिवासियों को जंगल से हटाया जा रहा है। विस्थापित आदिवासी आज विद्रोही बनकर अधिकार के लिए लड़ रहे हैं। अपनी भूमि पर, जंगल पर दूसरों के अधिकार का कड़ा विरोध करनेवाला आदिवासी है। आजादी के आंदोलन में देश के विभिन्न अंचलों में सशस्त्र आंदोलन आदिवासियों ने किया है।

—: संदर्भ सूची :—

1. नालंदा विशाल शब्द सागर – सं.नवल जी, पृ. 125 – 126
2. भारतीय आदिवासी समाज – ए.वाय.कोंडेकर, पृ. 6
3. आलोचना – अप्रैल – जून – 1984, पृ. 47
4. आदिवासियों के बीच – प्रो.प्रेमचंद जैन, पृ.17
5. वही, पृ. 18
6. Cultural Socilogy - J.L.Gillin and J.P.Gillin, P – 282
7. मेरी बस्त्र की कहानियाँ – मेरून्निसा परवेज, पृ. 109
8. हिंदी विश्वकोश खण्ड – 1 – प्रधान सं.कमलापति त्रिपाठी, पृ. 370
9. आदिवासी विमर्श – सं.राणू कदम, पृ. 59
10. वही, पृ. 59
11. भारत की जनजातियाँ – डॉ.शिवतोष दास, पृ.97
12. आदिभूमि – प्रतिभाराय, पृ.294
13. आदिवासी विमर्श – सं.राणू कदम, पु.
14. बयान – सं.मोहनदास नैमिशराय, मार्च, 2010, पृ. 45

द्‌वितीय अध्याय

सामाजिक संदर्भ में आदिवासी जनजीवन

प्रस्तावना –

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य अनायास ही समाज व्यवस्था का अंग बन जाता है। समाज में रहते हुए मनुष्य को सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ता है। यह नियम उसे जाति, रूढ़ि – परंपरा, पारिवारिक जीवन, धर्म आदि की जानकारी देते हैं।

हर एक समाज की अपनी अलग पहचान रही है। वर्ण व्यवस्था, वित व्यवस्था, जातीयता, राजनीतिक मूल्य आदि संस्थाएँ भारतीय समाज जीवन का आधार रही है। आदिवासी समाज भारतीय समाज जीवन का एक अंग है, जो पहाड़ी घाटी प्रदेशों में, नगरों से दूर अपनी समाज व्यवस्था से चिपका हुआ जी रहा है।

आदिवासी समाज की सामूहिकता प्रधान प्रवृत्ति है। लोकगीत, लोककथा आदिवासी मन का दस्तावेज है। आदिवासी समाज दुःखी और सताया हुआ है। अन्याय, अत्याचार से पीड़ित है। अनेक व्याधियों से जर्जर है। जंगल और जमीन उनकी संपत्ति है। आदिवासी समाज की जरूरतें सीमित होने के कारण उनका जीवन सुखी, स्वच्छंदी रहा है। आदिवासियों का अज्ञान के कारण, जमींदार, धार्मिक व्यक्ति, पुलिस, सरकारी अफसरों द्‌वारा शोषण हो रहा है। जातीयता, उच्च नीचता से आदिवासी पीड़ित है। कोयला खदान, औद्‌योगीकरण, जंगल कटाई, बाँध निर्माण के कारण विस्थापितों के पुनर्वास की ओर ध्यान न देने से अलग राज्य, नक्सलवादी आंदोलन जैसी नई समस्याएँ बन रही हैं। प्रकृति की गोद में स्वच्छंदी बना आदिवासी विद्रोही बनता जा रहा है।

2.1 आदिवासियों का शोषण –

कोयला अंचल की संथाल आदिवासी जाति बाह्य शक्तियों के शोषण से अत्यधिक त्रस्त है। अमीर लोग कुत्ते की भाँति आदिवासी औरतों को नोंचते हैं। मैना कहती है –''हाँ हम पापिन, हमारा माँ पापिन, ऊ सब धरमातमा। कोई

भी जनाना ई कुत्ता लोग से बचा नई को .....ड.....ड.....ड.....ई नई।''[1] मैना जैसी को भी जेलर सिपाही, सीताराम पंडित, बनन आदि न जाने कितने कुत्तों ने नोंचा है। कोयले की खदाने इतनी गहरी होती है कि कभी जमीन धँसने पर अनेक आदिवासी मजदूर जिंदा दफनाएँ जाते हैं। पुलिस और अधिकारी आदिवासियों को न्याय देना तो दूर बल्कि उनसे ही रिश्वत लेते हैं। सुब्बराव सोरे जैसे निरपराध लोग माफिया और पुलिस की गोलियों के शिकार बनते हैं। ''अब बाँसगड़ा में रहने का मतलब है या तो पुलिस का शिकार बनना या माफिया का।''[2] पुलिस, माफिया और पूँजीपातियों के कारण यह जाति विस्थापन से गुजरती मिलती है। इसी कारण एक बार वे बाँसगड़ा को छोड़कर बेरमों चल जाते हैं। मैना की माँ और मैना महेंद्र बाबू के शोषण का विरोध करती है तो उन्हें अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती है।

वीरेंद्र जैन कृत पार उपन्यास में आदिवासी जीरोन क्षेत्र के साथ – साथ लड़ैई ग्राम्य की यात्रा भी चल रही है। जीरोन खेरा वही इलाका है जहाँ दीन – हीन राउल आदिवासी लोग बसते हैं। वे मन के भोले होते हैं। अपने पेट को पालने के लिए वनोपज को बेचते हैं। किंतु दूसरी तरफ उच्च समाज के तथाकथित सफेद पोश लोग किस प्रकार राउल आदिवासियों का शोषण करते हैं।

बाँध निर्माण के कारण उठने वाली समस्याएँ, डूबे क्षेत्र में डूबे जानेवाली मनुष्यता, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, भूगोल, पशु, पक्षी, पेड़, पौधे, पहाड़ और वहाँ रहनेवाले आदमी है, आदमी भी, जिनमें से कितने तो पानी में डूबते हैं, और कितने बाँध निर्माण की वजह से यंत्रणाओं, यातनाओं और भूख के पारावार में समाचार खत्म हो जाते हैं। सरकार डूब क्षेत्र को बीसियों साल पहले डूबा हुआ मानकर सो जाती है, वहाँ रहनेवाले लोगों ने जीवित मनुष्य मानना छोड़ देती है।

शंकर शेष कृत 'पोस्टर' नाटक में आदिवासी जनजीवन का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत नाटक में आज आदिवासी जाति पर अन्याय एवं शोषण होता है और चुपचाप सहन करते हैं। अशिक्षित होने के कारण जमींदारों का विरोध नहीं कर सकते हैं। ये लोग दिन – रात मेहनत करते हैं और अपने मालिक से जो

मिलता है इसी में गुजारा करते हैं। इसी अन्याय, अत्याचार से भरी जिंदगी में परिवर्तन लाने की आवश्यकता को महसूस किया गया है।

2.2 विवाहेत्तर यौन संबंध –

सुमंत कौर के अनुसार –''विवाहेत्तर यौन संबंध कई तरह के हो सकते हैं। जैसे विवाहपूर्व प्रेमसंबंध, विवाह के बावजूद पति या पत्नी दोनों के किसी अन्य से संबंध विधुर के किसी के संबंध, अधेड़ अविवाहितों के संबंध, स्त्री – पुरूषों में मित्रता संबंध, वेश्या संबंध एवं पुरूष द्वारा स्त्री का शोषण आदि।''[3] कुछ आदिवासी जातियों में पुरूष महिलाओं को वेश्या बनाकर धन अर्जित करते हैं। कुछ आदिवासी जातियों में नवयुवक एवं नवयुवतियों को अपनी ही आदिवासी जाति में स्वच्छंदतापूर्वक यौन संबंध स्थापित करने की स्वतंत्रता रहती है।

मैत्रेयी पुष्पा कृत 'अल्मा कबुतरी' उपन्यास में मैत्रेयी जी ने बुंदेलखंड की आदिवासी कबूतरा जाति के स्त्री – पुरूष यौन संबंधों पर गहराई से प्रकाश डाला है। कबूतरा घुमक्कड़ जाति होती है। एक गाँव से दूसरे गाँव जाकर कोई निर्जन जगह या किसी के खेत में डेरा डाले अपना जीवन गुजार लेती है। उनका मूल व्यवसाय शराब बेचना होता है। शराब बेचने का व्यवसाय होने के कारण उनके यहाँ हर एक किस्म के लोग आया – आया करते हैं। स्त्री के नसीब में अपने पति का सुख अधिक दिनों तक नहीं रहता। शराब बेचने या चोरी करने के जुल्म में पुलिस द्वारा अधिकतर कबूतरा जाति के पुरूषों को अपराधी घोषित किया जाता है। ये सारे अपराधी पुलिस से बचने के लिए अपने डेरों से दूर जगलों में जाकर बसते हैं। ''कदमबाई का पति जंगलिया इसी प्रकार का अपराधी बनकर कदमबाई से दूर जंगल में जाकर बसता है। जंगलिया की अनुपस्थिति में कज्जा मंशाराम माते कदम के रूप पर मोहित होकर धोखे से जंगलिया की हत्या करके कदमबाई के साथ शारीरिक संबंध बाँधता है।''[4]

डॉ.रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं – ''नट कई तरह के होते हैं, इनमें करनट जरायम पेशा कहलाते हैं। इनकी कोई नैतिकता नहीं होती। इनमें मर्द औरतों को वेश्या बनाकर उसके

द्वारा धन कमाते हैं। वैसे तो नट समाज में केवल शारीरिक स्तर पर ही औरत का अस्तित्व माना जाता है, वह स्वच्छंद यौनाचार को औरत का कार्य मानता है।''[5]

2.3 शिक्षा :–

आदिवासी जनजीवन की समस्या की जड़ अशिक्षा है। आज वे समझ गए हैं कि शिक्षा पाना अनिवार्य है। सरकारी शिक्षा नीति से वे प्रभावित है।

'जंगल के फूल' में पाठशाला खोलना, जाने कितनी आँखों में बदरी प्रसाद का बीस साल से अध्यापक होना, कमलापन का पढ़ लिखकर उच्च पद पर कार्य करना। 'शैलूष' उपन्यास में सावित्री द्वारा नटों को शिक्षा का महत्व समझाकर 'कमलापुर' में स्कूल चलाना। 'सुराज्य' उपन्यास में गांगी द्वारा ढलती उम्र में भी बच्चों को पढ़ना। 'एकलव्य' एक एकलव्य निषादों को शिक्षा देकर संगठित करना चाहता है। कृषि ज्ञान देना, राज बनाने में आगे लाना चाहता है।

'जंगल के आसपास' उपन्यास में दमकड़ अँचल के लोग जंगली जानवरों के उत्पात से भयभीत है। यहाँ के लोग अपने बच्चों को पाठशाला में भेजने के लिए तैयार नहीं। पाठशाला की दशा से चिंतित होकर मास्टर दिनेश सोचते हैं – ''पूरे डेढ़ महीने में स्कूल डेढ़ दिन लगा था। और वह भी चार बच्चों को लेकर।''[6]

'सोनामाटी' उपन्यास में भगवान व्दिवेदी लड़कियों के शिक्षा के विरुद्ध है। वे स्वयं अपनी बेटी को पढ़ने से विरोध करते हुए कहते हैं – ''ज्यादा पढ़ना – लिखना दिक्कत पैदा करेगा। लड़की चूल्हे – चौके के लिए बेकार हो जाएगी। खानदान में या गाँव घर में किसी औरत ने नौकरी नहीं की।''[7]

'अग्निबीज' उपन्यास के रामपुर अंचल में नारी शिक्षा का विरोध किया जाता है। ''लड़के कुछ स्कूल में जाने भी लगे थे पर लड़कियों का स्कूल जाना हिमालय लाँघने के समान था। छबिया हमेशा कहती थी, 'बहिन जी, जिस दिन हम लोग पढ़ने लगेंगे एक दिन जानों गंगा में जौ बो दिया गया।''[8] अर्थाभाव, अज्ञान और अंधविश्वास के कारण आदिवासी जीवन में पिछड़ी जनजातियाँ शिक्षा

के प्रति उदासीन पाई जाती है। 'महर ठाकुरों का गाँव' उपन्यास में कुमाऊँ के पहाड़ी अंचल में अंधविश्वास और रूढ़ि – परंपराओं के कारण शिक्षा के प्रति उदासीनता पाई जाती है। शिक्षित हरदा गाँव के बच्चों को पढ़ाता है, तब कुछ लोग कहते हैं कि हरदा पागल हुआ और कहते हैं –''सारा गाँव बाभन बना दिया हरूवा शात्तरी ने। बिगाड़ के रखेगा आखिर साला गाँव के बच्चों को। न काम, न धाम। सुबह से शाम तक गिटपिट – गिटपिट लगी रहती है गाँव में। जहाँ देखो धूप, हवन होम। खेत गाड़ी का काम सब चौपट हो गया है। अरे, तुम्हारे होम हवन से थोड़े ही पेट भरेगा अन लड़कों का।''[9] आदिवासी जीवन में शिक्षा से ज्यादा खेती को महत्व दिया जाता है।

2.4 विवाह संबंधी प्रथाएँ :

आदिवासी समाज में विवाह संबंधी विविध प्रकार की प्रथाएँ प्रचलित है। 'गोंड' आदिवासियों में विवाह संबंधी लमसेन, दूध लौटना, तम्बाकू माँगना, तम्बाकू नहीं बाँटना, चावलों का मिलना तथा बाँस सुराही आदि प्रथाएँ प्रचलित है।

विवाह का आयोजन फसल कटाई के बाद गर्मियों के दिनों में ही किया जाता है। 'सोनामाटी' उपन्यास में रामरूप की कन्या कमली का विवाह वर पक्ष के लोग फागुन में करने की इच्छा प्रकट करते हैं, तब कमली की माँ रामकली कहती है –''अरे हम लोग भी क्या बनिया महाजन है कि फागुन में शादी होगी? साल माथ में फसल भेंटा जाने पर गाँव में विवाह शादी ठानते हैं।''[10] विवाह संबंधी विभिन्न रिवाजों का जैसे – पूजन, आसन, स्नान, चंदनसेली, गंध, सिंदूर, पुष्प, माला, दूर्वा, दीप, गुड़, अक्षत, भोग, नैवेश आदि। 'शैलूष' उपन्यास की करनट जनजाति में विवाह संबंधी विभिन्न रस्म – रिवाजों का पालन किया जाता है। इनमें अपहरण विवाह वा प्रचलन भी पाया जाता है। दहेज के रूप में वर मूल्य और वधू मूल्य की पद्धति भी है। नटों के विवाह में वर पक्ष को कन्या के यहाँ डलवा भेजने की रस्म का अत्यंत महत्व है। डलवे में लड़की के लिए कुछ चीजें भेजनी पड़ती है। हीरामन की शादी के समय भेजा जा रहा डलवा इस प्रकार था – ''वहाँ बाँस की सीखें से बुना बहुत सुंदर डलवा रखा था। उसमें साड़ी, बाऊज, पेटीकोट, चप्पले, रंग – बिरंग की

शारीयाँ, टिकुलिए, चूडियाँ और तरह – तरह के प्रशासन की चीजें, तेल, साबुन, क्रीम आदि बाकायदे से सजी थी।''[11] नटों की प्रतिष्ठानुसार डलवें में शराब भेजने का भी प्रचलन है। विवाह के समय लड़का लड़की की माँग सात बार सिंदूर से भरता है दोनों एक – दूसरे को शराब पिलाते हैं उसके बाद विवाह संपन्न होता है। इस संदर्भ में माणिक से लल्लू काका कहते हैं – चलों मानिक, तुम लगाओं सात बार सिंदूर रूपा की माँग में। रुई ऐंठ कर बनाई हुई बत्ती थी, उससे सात बार सिंदूर छुआ कर उसने रुपा की माँग भर दी।....रूपा, अब उठ इस चुक्कड़ में महुये का ठर्रा भरकर पिला मालिक को। देर चुक्कड़ तू पिलायेगी, फिर दो चुक्कड़ तुझे मानिक पिलायेगा।''[12]

'जंगल के फूल' उपन्यास में जलिया की शादी कोई दूसरे युवक से तय की जाती है। शादी तय होने से पहले वह अपने गाँव के युवक झालर सिंह से प्रेम करती है। जब धुइंगा बाँटती वह झालर सिंह के पास जाती है, और महुआ को कहती है कि, 'नहीं महुआ, मुझसे धुइंगा नहीं दी जाएगी।

2.5 पारिवारिक जीवन :–

परिवार सामाजिक संरचना का प्रमुख अंग है। यह एक ऐसी संस्था है जहाँ व्यक्ति का विकास, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा, संतानोत्पति, अस्तित्व की रक्षा आदि कार्य सहज होते हैं।

आज नागरीकरण, पाश्चात्य संपर्क, भौतिक व्यवस्था के कारण संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। 'अपने लोग' उपन्यास में देऊ का परिवार संयुक्त परिवार है। परिवार में चाचा विशनू , बेटा भोला, लल्लू के भाई कुँवर और कलिया एवं उनकी पत्नियाँ, बच्चे आदि सभी साथ – साथ रहे हैं। कुछ ही दिनों में परिवार टूट जाता है। कुछ ही दिनों में परिवार टूट जाता है। ''घर में दो चूल्हे जल गए। पूरा घर साँय – साँय कर रहा था। वक्त की बात है। कल तक बहुएँ, देवरानी, जेठानी, चाचा भतीजा, भाई सब एक थे। परिवार एक – दूसरे का था, परंतु आज उसी घर में दो परिवार हो गए। एक विशनू – लक्ष्मी का, दूसरा देऊ – लल्लू का।''[13] कहना सही है कि धन – वैभव के कारण देऊ का परिवार टूट जाता है।

'जंगल के फूल' उपन्यास में मातृसत्तात्मक परिवार, 'शैलूष' में

पितृवंशीय सत्ता परिवार 'धार' में संयुक्त परिवार, साँप और सीढ़ी' में संयुक्त परिवार, 'कब तक पुकारूँ' में बहुपति परिवार के दर्शन हो रहे हैं। आदिवासी परिवार में पति, पत्नी, बच्चे रहते हैं। आधुनिक युग में खानपान, नौकरी, विस्थापन के कारण परिवार की नींव हिल रही है। वंशरक्षा, वंशप्राप्ति के लिए बहुविवाह, नारी सौंदर्य के कारण बहुपत्नी रखने की प्रवृत्ति लक्षित होती है।

'शैलूष', 'दंड विधान', 'सोना माटी', 'सु – राज', 'सागर की गलियाँ' आदि उपन्यासों में भी संयुक्त परिवार का चित्रण किया गया है।

2.6 नारी शोषण :–

ईसाई करण, अंग्रेजों, जमींदारों, ठाकुरों की मनमानी, धार्मिक व्यक्ति का प्रभाव, सामाजिक – पारिवारिक मान्यता, अज्ञान, अंधश्रद्धा के कारण आदिवासी नारी शोषित है। उच्च वर्गीय पुरूषों द्वारा निम्न जाति की स्त्रियों को शोषण होता रहा है। गाँव में आई नववधू का शोषण उच्च वर्ग की परंपरा रही है। 'विकल्प' उपन्यास में उच्चवर्गीय रूदल गाँव के हर एक निम्न जाति की लड़की का शोषण करता पाया जाता है। ''गाँव की छोकरियों पर शासन है रुदन का। कोई माई का लाल ऐसा नहीं जो अच्छी लौंडिया ब्याह लाए और वह रुदल के हाथों से बचाकर रखे।''[14] 'वनतरी' उपन्यास में ठाकुर परमजीत सिंह आदिवासियों की बहू – बेटियों की बहू – बेटियों का शोषण करता है। यदि कोई आदिवासी स्त्री उसका विरोध करती है तो उसकी हत्या कर उसे नदी में फेंक दिया जाता है। ठाकुर का गुंडा जुलूमसिंह भी निम्न जाति की स्त्रियों का शोषण करता पाया जाता है। मेहरुन्निसा परवेज जी ने अपनी कहानियों में बस्तर की जनजातियों में नारी जीवन की पीड़ा दर्द एवं त्रासदी का चित्रण किया है। 'जंगली हिरनी' कहानी की मेगन का पर्यटक अंग्रेज दैहिक शोषण करता है।

2.7 जात पंचायत :–

स्वतंत्रता के पहले आदिवासी समाज में जात पंचायत का स्थान महत्त्वपूर्ण था। वैवाहिक संबंध, तलाक, अवैध यौन संबंध, आपसी कलह, खेती संघर्ष आदि के संदर्भ में निर्णय देने का कार्य जाति पंचायत का ही होता था। प्रमुख को मुखिया कहते हैं, गाँव के बहार, मंदिर के पिछवाड़े, खुले मैदान में

इसका आयोजन होता। नियम अलिखित, निर्णय सर्वमान्य होता है। विभिन्न जाति के लोग इसमें सम्मिलित होते हैं। यह विवाह, चोरी, कत्ल, अवैध संबंध, अवैध संतान, दंगा पसाद पर निर्णय करती है।

'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास में जीते प्रेम संबंध में विवाह पूर्व ही पेट से रहने वाली बुज्जी की बेटी दीवी पंचायत द्वारा दंडित की जाति है। वह विवाहपूर्व ही एक मृत बच्चे को जन्म देती है। यह खबर पंचायत में पहुँचती है, तब फैसले के लिए मेवाड़ से पंच एवं मुखिया आ जाते हैं, और उसे दंडित करते हैं। रम्या को अपने पीठ के दाग बताते हुए दीवी कहती है –''उसके बाद हुआ यह कि पंचों ने तिरसूल गरम किया और हम दोनों की पीठ पर दाग दिया बारी – बारी।''[15] 'जंगल के फूल' सुलकझाए द्वारा शराब पीकर दूल्हे की पिटाई करने पर पंचायत बैठती है। 'वनवासी' में पंचायत का निर्णय भगवान का आदेश माना जाता है। 'धार' उपन्यास में जातपंचायत मैना को दोषी मानती है। उसे पंचायत, स्थानीय मंडल, ग्रामसभा भी कहते हैं। आज शिक्षित आदिवासी जात पंचायत का विरोध करता हुआ लक्षित होता है। आदिवासी या पिछड़ी जन – जातियों में आज भी जाति पंचायत का स्थान महत्वपूर्ण है।

2.8 घोटुल –

आदिवासी गोड़ो की 'घोटुल', 'युवागृह' महत्वपूर्ण विरासत, शिक्षा केंद्र, संस्कृति का प्रतीक है। घोटुल में स्वच्छंदी व्यवहार चलता है। घर में पति – पत्नी, तीन – चार वर्ष के बच्चे होते हैं। युवक – युवती जीवन की प्रारंभिक शिक्षा, यौन शिक्षा यहाँ प्राप्त करती है। घोटुल का सरदार किसी भी लड़की के साथ संबंध रख सकता है। हर सदस्य को रात वहाँ गुजारनी होती। बाहर रहने से सजा दी जाती। आदिवासियों का विकास योजना में सहयोग लेना हो तो पहले घोटुल की सहायता आवश्यक है। राजेंद्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोडों का मर्मस्थ, गाँव के बाहर, झोपड़ीनुमा केंद्र है। खुला मैदान, दीवारों पर जन्म से लेकर मृत्यु की झाँकियाँ होती है। सूरज डूबते ही गाँव के युवक – युवती चटाई लेकर सज धज कर घोटुल की ओर निकलते हैं। एक दूसरे का स्वागत करना, अनुशासन के साथ सौपी जिम्मेदारी निभाना, नाच – गान होना, सारी रात वहाँ बिताना। सरदार प्रमुख होने से घोटुल पर नियंत्रण

रखता है। यहाँ यौन शिक्षा के पीछे वासनात्मकता नहीं होती। नाच – गान के पश्चात प्रेमिका प्रेमी के साथ जाती है, मुर्गे की बाँग के साथ घोटुल खाली होता है। ''घोटुल गाँव का रक्षक है। वहाँ का हर जवान सिपाई होता है। गाँव पर आक्रमण करनेवाले को प्रथम घोटुल से लड़ना पड़ता। 1908 में बस्तर में जो विद्रोह हुआ उसका केंद्र घोटुल ही था।''[16] शिक्षा, अनुशासन, संस्कार निर्माण का केंद्र घोटुल है।

2.9 नारी जीवन –

आदिवासी समाज शुरू से अपनी अस्मिता, पहचान को लेकर असुरक्षित महसूस करता आया है। हिंदी कथा – साहित्य में आदिवासी अस्मिता की बोलती तस्वीर प्रस्तुत है। आदिवासी 'बेचारे हैं' – शोषित और उत्पीड़ित लेखकीय सहानुभूति के पात्र हैं। विशेषकर, आदिवासी स्त्रियों के संदर्भ में तो इस तरह का लेखन और भी क्रूर दिखाई देती है। जब हम साहित्य में आदिवासी स्त्रियों को सिर्फ स्वच्छंद यौन की वस्तु के रूप में और अपना बलात्कार करवाते ही देखते हैं। भारतीय साहित्य में आदिवासी महिलाएँ परदेशी के प्रेम में देह सौंपती, दाई, आया, सेविका आदि के रूप में मार खाती, बलात्कार भोगती हुई ही दिखाई देती है। आदिवासी स्त्रियाँ हर वक्त, हर किसी के साथ सहवास के लिए तत्पर रहती है, क्योंकि उनका यौन वर्जना से मुक्त समाज है। सही है कि आदिवासी स्त्रियाँ लड़ रही है, अपने समाज के भीतर मौजूद अंधविश्वास, कुरीतियों से, बाहरी शोषण उत्पीड़न से। विस्थापन, पलायन और औद्योगीकरण की सबसे ज्यादा मार आदिवासी महिलाओं को ही झेलनी पड़ी है। खदान क्षेत्रों और औद्योगिक शहरों के विकास के साथ ही आदिवासी महिलाएँ पहले से कहीं ज्यादा असुरक्षित हुई है। पितृसत्ताक समाज में स्त्री से उपेक्षा की जाती है कि वह पुरूष की दासी बनकर रहे।

करनट आदिवासियों में नारी की सामाजिक स्थिति अत्यंत दर्दनाक है। 'कब तक पुकारू' उपन्यास का नायक सुखराम अपने शब्दों में कहता है –''औरत! तू मेरे पाँव की जूती है। कजरी और प्यारी दोनों मेरी है। कजरी कहे कि मन की करेगी सो नहीं होगा। प्यारी भी मेरी होगी।''[17] आदिवासी नारी गाँव के ठाकुरों और पुलिस लोगों के अत्याचार का शिकार बनना पड़ता है।

आदिवासी नट समाज उपेक्षित समाज है। आदिवासी करनटों को अनैतिकता के संबंध में डॉ.कमलाकर गंगावने लिखते हैं – ''अभिजात समाज के समान करनटों में सामाजिक नियमावली नहीं होती। अभिजात समाज में जो नीतिमूल्य है, करनटों का उनसे कोई सरोकार नहीं है। अभिजात समाज में जो नैतिकता मानी जाती है, वही करनटों में संभवतः अनैतिकता है। इसके विपरित अभिजात में जो अनैतिकता है, वही आदिवासी नटों में प्रायः नैतिकता है। शराब पीना, चोरी करना तथा जुआ खेलना करनटों के लिए नैतिकता है। इन गुणों का न होना उनके समाज में अस्वाभाविक ही माना जाता है। सुखराम करनटों के नैतिक मूल्यों से परे है, इसलिए करनट नर – नारी का उसकी ओर देखने का नजरिया ही कुछ अलग है।''[18] आदिवासी नरनटियाँ जीवनयापन के लिए दूसरों से अपने यौवन का सौदा करती है। आपने यौवन के बल पर खुद को बेचकर धन कमाती है। वेश्यावृत्ति को ध्यान में रखकर विमल शंकर लिखते हैं – ''यौवन के बल पर वह स्वयं को, अपने पति को पुलिस से छुड़ाती है, भूखे मरते करनट व बच्चों को भोजन लाकर खिलाती है।''[19]

आदिवासी स्त्रियाँ पुरूषों के बराबर कार्य करते पाई जाती है। घास काटना, पशुओं की देखभाल करना, जंगल से लकड़ियाँ लाना, खेतों में काम करना, शिकार में पति को मदद करना आदि काम का आदिवासी स्त्रियाँ करती रहती हैं। 'महर ठाकुरों का गाँव' उपन्यास में सीरगाड गाँव की स्त्रियों के कार्य का वर्णन इस प्रकार है –''सीरगाड गाँव की औरते इसी पश्याड़ की धार से मवेशियों के लिए घास ले जाती है और जंगल से लकड़ियाँ और बाँज के पतेल भी गाय भैसों के खाने के लिए बटोर ले जाती है। भोर का उजाला फूटते ही औरत गाय – भैसों का दूध दुहती है और फिर वम को चली जाती है। लकड़ियाँ और पतेल का गट्ठर घर आँगन में फेककर खाने की तैयारी करती है और परिवार को खाना खिलाकर बरतन माँजकर फिर रस्सी लेकर या तो पश्चाड़ की धार में घास लेने या खेतों में काम करने चली जाती है।''[20] इससे स्पष्ट होती है कि आदिवासी स्त्रियों का काम गोंद इकट्ठा करना, शहद के छत्ते निकालना, जड़ी – बूटियाँ, फल – फूल एकत्रित करना आदि होता है।

उच्चवर्गीय पुरूषों द्वारा आदिवासी स्त्रियों का शोषण होता रहा है। गाँव में आई नववधू का शोषण उच्चवर्ग की परंपरा रही है। 'विकल्प' उपन्यास में उच्चवर्गीय रूदल गाँव के हर एक आदिवासी लड़की का शोषण करता पाया जाता है। ''गाँव की छोकरियों पर शासन है रूदल का। कोई माई का लाल ऐसा नहीं जो अच्छी लौंडिया ब्याह लाए और वह रूदल के हाथों से बचाकर रखे।''[21] 'वनतरी' उपन्यास में ठाकुर परमजीत सिंह आदिवासियों की बहू – बेटियों को शोषण करता है। यदि कोई आदिवासी स्त्री उसका विरोध करती है तो उसकी हत्या कर उसे नदी में फेंक दिया जाता है। ठाकुर का गुंडा जुलूमसिंह भी निम्न जाति की स्त्रियों का शोषण करता पाया जाता है। ''किसी के घर में घुसता और जवान बेटी हो या बहू टाँगकर ले आता। कोई चूँ – चपड़ करता तो ऐसा सापड़ मारता कि छठी का दूध याद आ जाता। फिर तो जी भरकर पहले खुद रूई की तरह धुन देता और बाद में ठाकुर के हवाले कर देता।''[22] इस प्रकार आदिवासी नारी की दयनीय दशा है।

आदिवासी समाज में नारी शिक्षा के प्रति उदासीनता पाई जाती है। आदिवासी जन – जातियों में नारी का पढ़ना – लिखना उसके विवाह के लिए बाधा बन सकता है। उनका पढ़ना – लिखना समाज को स्वीकार नहीं है। 'सोनामाटी' उपन्यास में भगवान द्विवेदी लड़कियों के शिक्षा के विरुद्ध है। वे स्वयं अपनी बेटी को पढ़ने से विरोध करते हुए कहते हैं – ''ज्यादा पढ़ना – लिखना दिक्कत पैदा करेगी। लड़की चूल्हे – चौंके के लिए बेकार हो जाएगी। खानदान में या गाँव घर में किसी औरत ने नौकरी नहीं की।''[23]

'जंगल के फूल' उपन्यास में गोंड आदिवासी समाज में व्याप्त यौन संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। 'घोटुल' नाम की संस्था में अविवाहित युवक – युवतियाँ रहते हैं। उनमें प्रत्येक का एक प्रेमी अथवा प्रेमिका होती है। ये नवयुवक रात्रि में 'घोटुल' में रहते हैं और वहाँ पर मनोरंजन के साथ – साथ स्वतंत्र रूप से यौन संबंध स्थापित करते हैं।

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में आदिवासी जातियों में पुरुष महिलाओं को वेश्या बनाकर धन अर्जित करते हैं अथवा वेश्यावृत्ति से उनका कमाया हुआ खाते हैं। कबूतरा घुमक्कड़ जाति होती है। उनका मूल व्यवसाय शराब बेचना

होता है। स्त्री के नसीब मे अपने पति का सुख अधिक दिनों तक नहीं रहता। शराब बेचना या चोरी करने के जुल्म में पुलिस द्वारा अधिकतर कबूतरा जाति के पुरुषों को अपराधी घोषित किया जाता है। ये सारे अपराधी पुलिस से बचने के लिए अपने डेरों से दूर जंगलों में जाकर बसते हैं।''कदमबाई का पति जंगलिया इसी प्रकार का अपराधी बनकर कदमबाई से दूर जंगल में जाकर बसता है। जंगलिया की अनुपस्थिति में कज्जा मंशाराम माते कदम के रूप पर मोहित होकर धोखे से जंगलियाँ की हत्या करके कदमबाई के साथ शारीरिक संबंध बाँधता है। कदमबाई कहती है –''वादे के हिसाब से वह पास आया, वह छाया को देखते ही मदहोश हो गई। गहराई हुई गेहूँ की बाले पेट को गुदगुदा रह थीं, गुनगुनी बाँहों ने उसका बदन बाँध लिया। हाय, सदा घाघरा उतारता आया था, आज पहले चोली के बटन खोल रहा है।..... कदम ने घाघरा खुद ही नीचे को सरका दिया। बंद आँखों में अपने ही गोरे बदन की छाया जगमगाई। आँखों पर रखे हाथों की उंगलियों से झांकना चाहती थी कि गर्म साँसो ने होठों पर कब्जा कर लिया। सारे डर – भय को दबाने की खातिर उसने अपने पुरुष को भींच लिया। आनंदलोक में विचरने वाली कदमबाई, दो गुनी ताकत से भिड़ रही थी। मिलन की डोर से बंधी स्त्री हर लम्हे नई – से – नई मुद्राएँ अपनाने लगी। अब केवल वह थी, बाकी कोई न था। धरती, धरती न थी दे हके साथ उठती – दबती चादर। आसमान, आसमान न था। तारों का झमकता झूलना.....।''[24] कदमबाई मंशा के साथ बार – बार यौन संबंध रखती है। उसके पति जंगलिया की मौत का जिम्मेदार स्वयं मंशा होता है। कदमबाई यह सारी बाते जानते हुए भी मंशा को सहजता से स्वीकारती है। केवल स्वीकारना ही नहीं, वह मंशा को अपना रक्षक मानकर रक्षक को खुश रखने हेतु बार – बार अपना शरीर देती रहती है।

सरोज केरकेट्टा अत्यंत ही संवेदनशील और बहुआयामी कवयित्री है। आदिवासी पुरूष, पत्नी का देहांत होने पर तुरंत दूसरा विवाह कर लेता है। उस स्थिति में उनके बच्चों का जीवन कष्टदायक हो जाता है।

आदिवासी समाज में कर्ज एक बड़ी समस्या है। फलतः आदिवासियों के शोषण में बनिया – साहूकार लोगों की बड़ी भूमिका रही है। शराब के लिए

कर्ज हो या पारिवारिक जरुरत के लिए, उसके बदले आदिवासी समाज को दिकू महाजन व सामंत बंधक बनाते रहे हैं। यहाँ तक कि कर्ज के एवज में वे उनकी स्त्रियों तक को हथिया लेते हैं। मजबूरी में माँ – बाप भी इस अदला – बदली में साझेदार बन जाते हैं। ऐसी स्त्रियों की तरफ से सरोज केरकेट्टा अपनी नाराजगी जताते हुए अपनी कविता 'क्यो बहका कर लाए' में कहती हैं –

''ओ मेरी माँ। क्यों भेजा मुझे तुमने?
दुश्मन साव ने तो। तुम्हारी आँखों में मुझे बार – बार
बे । किसे बताऊँ। किसके पास रोऊं?
मेरी माँ मुझे बहका कर लाया।
बाध मारे साव को। एक दिन मैं
दबोचूँगी। सता – सता कर पूछँगी।
क्यों बहका कर लाया।''[25]

आदिवासी समाज में बूढ़ी महिलाएँ अपने पूरे परिवार के साथ भावात्मक रुप से जुड़ी रहती है। कभी खाली बैठना पसंद नहीं करती। जब तक हाथ पाँव चलते हैं, वे कुछ न कुछ काम करती रहती है। सरिता सिंह बड़ाइक की 'आजी' कविता में –

''दांत बिन मुँह पिलपिली। धंमी आँखों में टकटकी।
रास्ते में ढंगी है आजी। कोई तो खबर भेजेगा। चिट्ठी में
नाती। ढेला फोड़ते, गोबर फेंकते। थक गई है काया।
नाती की आम में टिकी है सांस।
आंगन में चटाई बुनती। 'करमा' से बतियाय आजी।''[26]

आदिवासी कविता में शोषण के जो दृश्य प्रस्तुत करती हैं, वैसा अन्यत्र नहीं मिलता। आदिवासी समाज मातृसत्ताक समाज रहा है। महिलाओं को वह हक सदियों पूर्व इस समाज को मिल चुका था, जिसकी नुमाइंदगी भारतीय संविधान पैंसठ वर्षों से करने की कोशिश कर रहा है। लेकिन बाहरी घुसपैठ और अपनी अंधविश्वासी रूढ़ि – वादिता के कारण यह पिछड़ेपन लगा है। बाहरू सोनवणे आदिवासी स्त्री की संवेदना कुछ इन्हीं शब्दों में –

''जवानी में वेश्या, बुढ़ापे में डायन ऐसे ही कहते हैं लोग

एक ऐसी चीज जिसे घाट में बांट में
जहाँ मिले थाम लो, जब भी चाहे अंग लगा लो
पूरी हुई हवस तो त्याग दो, चीख न पुकार।''[27]

एक तरफ स्त्री को वे वेश्या, डायन समझनेवाला सामज है, तो दूसरी तरफ हटिया कारखाने में मजदूरी कर सुखी जीवन की कामना में जीनेवाले वे आदिवासी है।

''काश यह संभव होता
काश, यह संभव होता
मैं प्रेम बन जाता
दिन – रात तुम्हारे पीछे पड़ता
तुम्हारी छाया का पीछा करता
प्रिय, तुम्हारे साथ भागकर खो जाता
मैं हटिया कारखाने में मजदूरी करता।''[28]

अपनी मूल्यों के प्रति आदिवासी लोग आत्मचिंतन भी करता है। आदिवासी कवि सारा दोष बाहरियों पर ही नहीं थोपता वह आत्मलोचन भी करता है। समाज में पतनशील हो रहे मूल्यों व अपनी विकृत जड़ परंपराओं पर भी चोट करता है। मेघालय का कवि पॉल लिंग्दोह अपने पतनशील युवक – युवतियों पर शर्मसार होकर व्यंग्य करता है –

''बिकाऊ है
हमारी युवा – विवाह योग्य लड़कियाँ
इस देश जैसी ही खूबसूरत
हमारी वरीयताः मैदानी इलाकों के मर्द
या बेशक समंदर पार। बस्स थोडे तंदुरुस्त।''[29]

निर्मला पुतुल घुसपैठियों द्वारा अपनी बस्तियों के बलात्कार की बात करती है जहाँ घुसकर ये आदिवासी स्त्रियों पर बलात्कार करते हैं। इस प्रकार आदिवासी स्त्रियों की यह दर्दनाक कहानी है।

रमणिका गुप्ता के 'सीता – मौसी' उपन्यास में आज की आदिवासी समाज की स्त्री की वो दास्तान है जिसमें वह देश का मुकाबला करती है जो

उसके स्वाभिमान को चोट पहुँचती है। सीता – मौसी ने ऐसे नेतृत्व को जन्म दिया है जो सदियों से मौन रहा है जो तिरस्कार भरी जिंदगी जीता रहा है। परंतु अब उस तबके जागरुकता उसने लगी है। आदिवासी स्त्री अस्तित्व – संघर्ष के स्वर गति पकड़ते हुए दिखलाई पड़ते हैं। उन्होंने परिस्थितियों के हर कदम पर, हर मोर्चे पर जिंदगी को मौत से छीना है – अपनी समाज के लिए, अपने स्वाभिमान के लिए, अपने जनजातीय के लिए।

आदिवासी स्त्री के प्रतिरोध को सशक्त आवाज देनेवाली कविताएँ आज हिंदी में दिखाई देती है। एक ही स्त्री – पुरुषों की नजर में अलग – अलग हो जाती है। जो पहले कली, फूल और बाद में डायन – सी लगती है। मीरा रामनिवास अपनी कविता 'अपराधबोध' के माध्यम से स़ी की त्रासदी को व्यक्त करती है –

''पहले जब वह हंसती थी कलियाँ सी
खिल उठती थीं चाल में हिरणों – सी
आप अपराध बोध से देखती है
आँखे क्योंकि वह आज विधवा है
जो पहले फूल थी वही आज कांटा है।''[30]

सरिता बड़ाइक की कविताएँ औरत के मात्र वस्तु बनाना नहीं चाहती वह उसकी आजादी के लिए सपने सजाती है। जैसे करमी, बुधनी, फुगनी, सुगिया अपने रोमजर्रा के कामों के साथ अस्तित्व के साथ यथार्थ मौजूद है। 'मुझे भी कुछ कहना है' कविता में अपने प्रियवर के लिए स्त्री के अस्तित्व का संदेश देती है। अपने जीवन कैसे झेलती है और घर के सदस्यों को चूल्हे से लेकर बिस्तर तक खुश रखकर भी कैसे खपती इसका स्पष्ट चित्र उभार देती है।

''चूल्हें बिस्तर की परिधि में
मुझे नहीं है रहना
गऊ चाल में चलकर नहीं थकना
मन में भरी है कविता
मंजूर नहीं है थमना हे प्रियवर।''[31]

सरिता बड़ाइक जी की कविता के संदर्भ में रमणिका गुप्ता कहती है –''सरिता की मोरपंखी भाषा इतनी बहुरंगी है कि झारखंड के हर तेवर को पकड़ लेती है। वे न केवल झारखंड के गाँवों की धड़कनों को स्वर देती है बल्कि झारखंड के हर निवासी की, चाहे वह किसी आयु, स्तर, वर्ग, वर्ण का क्यों न हो उनके बिम्ब सरल सहज शब्दों में खड़ा कर देती हूँ।''[32]

आदिवासी लड़कियों का जमींदारों, प्रधान, शहरी बाबुओं से शोषण होता आया है। नौकरी का बहाना हो या शादी का झूठ, इन कोमल मासूम लड़कियों को जिदगी के नए – नए सपने दिखाकर बेंगलोर, मुंबई, पूना, कोलकत्ता, दिल्ली जैसे बड़े शहरों में बेचा जा रहा है। चंद रूपयों और विदेशी शराब के लालच में गाँव का प्रधान अपनी बेटी, बहनों को बेपत्ता है। निर्मला पुतुल जी 'चुड़का सोरेन' कविता के माध्यम से कहती है –

''कैसा बिकाउ है
तुम्हारी बस्ती का प्रभाव
जो सिर्फ एक बोतल
विदेशी दारू में रख देता है
पूरे गाँव को गिरवी
और ले जाता है
कोई लड़कियों के गट्टर की तरह।''[33]

ससुराल में लड़कियों के साथा शोषण, अत्याचार, दहेज के लिए जलाना, खेत और घर को संभालना और यह सब बुधनी, मोसरी, मंगरी जैसी पीड़ित युवतियों के उदाहरण देखे हैं। डॉ.मंजु ज्योत्सना जी ब्याह कविता के माध्यम से –

''पिता मेरी शादी मत करना
मैंने देखी है – बुधनी की जिंदगी
बाल – बच्चे संभाल खेत में खटती है
उसका मर्द सांझ, सवेरे – रात
मारता है कितना।''[34]

आदिवासियों के पिछड़ेपन का एक कारण है रूढ़ि – परंपराएँ,

अंधश्रध्दाएँ जिसके कारण वह ना ही अपना विकास कर पाए है। न ही बुरी हालात से बाहर निकल पाए हैं। जिसके ना पर आज स्त्रियों की विधवा, डायन कहकर सताया जाता है। निर्मला पुतुल जी अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्रियों के अधिकार, हक, अस्तित्व, घर – वर्ग – जाति में अपनी बराबरी का हक माँगती है। वह परंपराओं से तंग आ गई है।

''पलकु बुढ़िया की तरह
मुझे भी घसीटकर ले जाते लोग कुलि में
और भरी पंचायत में सर मुंडवा
नचा देते नंगा कर देते मुँह पर पेशाब
ठुंस देते मैला।''[35]

आदिवासी स्त्री के जीवन के संघर्ष को लेकर रमणिका गुप्ता, महावेश्ता देवी, निर्मला पुतुल, सरिता बड़ाइक, ग्रेस कुजुर, मीरा रामविलास, डॉ. मंजु ज्योत्सना आदि साहित्यकारों ने आवाजी दी है। इन साहित्यकारों ने आदिवासियों के उन प्रश्नों की तरफ ध्यान देनेवाले साहित्य का निर्माण किया है, जो आदिवासियों जागरुकता, प्रेरणा, अपने हक के लिए लड़ने की शक्ति दे सके। कवियों के मन को वेदना और विद्रोह बड़े पैमाने पर व्यक्त हुआ है। उनक कविताएँ क्रांतिकारी है।

2.10 आदिवासी जनजीवन और संघर्ष :–

''जंगल, पहाड़, पशु – पक्षी, हरि – भरी घाटियाँ और उसके बीच अपने अधिकारो को लेकर संघर्ष करते आदिवासी इनकी रचनाओं के केंद्र में है। आदिवासी कभी वनपति कहते थे और वन के स्वामी हुआ करते थे वे आज अपनी जमीन और जंगलों से बेदखल होकर भुखमरी के कगार पर पहुँच गए हैं। डॉ.रमादयाल मुंडा का कथन दृष्टव्य है – ''पूरा देश मरुभूमि बनने के कगार पर है जहाँ आदिवासी है वहाँ थोड़ा जंगल बचा है। सरकार के लिए तो यह रेव्हेन्यू मात्र है। जंगल को बचाना है तो आदिवासी को बचाना होगा। पहले खेती से आधा पेट भरता था तो आधा पेट जंगल से। लेकिन जंगल तो वैसे लोगों के हाथ से चला गया जो जंगल को समूल नष्ट करने पर तुले हैं। जंगल देखते – देखते गायब हो गया। जंगल के आदमी का चेहरा भी उजाड हो

गया। हम अंदमान निकोबार देखकर आए हैं। देह पर कपड़ा नहीं लगता है पूरा सत ही निचुड गया है। मूल वजह है जंगल नहीं रहे।''[36]

संजीव का 'सावधान नीचे आग है' (1986) और 'धार' (1990) उपन्यास में मध्यप्रदेश की झरिया क्षेत्र की कोयला खान की एक दुर्घटना को केंद्र में रखकर कोयला – माफियों, ठेकेदारों और उनके दलालों के स्वार्थी, शोषक और क्रूर रूप का चित्रण किया गया है। संजीव के 'पाँव तले की दूब' (1995) और 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (2000) उपन्यास का विषय झारखण्ड और बिहार के दूरदराज अंचलों की वास्तविकता से जुड़ा है। 'जंगल जहाँ शुरू होता हैं' में नेपाल की सीमा से जुड़े बिहार के पश्चिमी चंपारण जिले के मिनी चंबल नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र में निवास करनेवाली थारू जनजाति तथा वहाँ के ठाकुओं, नेताओं, पुलिस और प्रशासन के भी छिड़ी जंग का रोमांच चित्रण हुआ है।

'अल्मा कबूतरी' (2000) में मैत्रेयी पुष्पा जी ने बुंदेलखंड क्षेत्र में बसनेवाली कबूतरा जाति के जीवन को अपना विषय बनाया है। प्रस्तुत उपन्यास में कबूतरा समाज के लगभग संपूर्ण ताने – बाने, लोग लुगाईयाँ, प्रेम झगड़े की वास्तविक जटिल कहानी का चित्रण हुआ है। नीरा नाहटा ने उचित ही कहा है कि – ''अल्मा कबूतरी अपराधी मानी जानेवाली एक विशेष जनजाति की जिजीविषा, रोटी की चिंता और जीने के संघर्ष में कूटते – पिटते, बंधते – मरते अविरत लगे रहनेवालों की ऐसी व्यथा – कथा है, जो आजादी की आधी सदी के बाद का भी यथार्थ है।''[37]

मुन्नी सिंह का 'सहराना' उपन्यास राजस्थान की एक मात्र आदिम जनजाति सहरिया के जीवन और समस्याओं पर आधारित है। सहरिया एक अत्यधिक पिछड़ा और उपेक्षित आदिवासी समुदाय है। जंगल पर आश्रित सहरिया जनजाति के लोग जरूरत पड़ने पर खेती भी करने लगे। इनकी खेती स्थानांतरण खेती की श्रेणी में आती है। खेती में अनाज पैदा नहीं होने ये जंगल से चिरौंजी, शहद, आंवला, महुआ, कत्था, कुरेंटा की दाल, धौली मूसली, गोंद आदि वस्तुएँ इकट्ठी करते और उनके बदले में मैदान से नमक, कपड़ा और अनाज ले आते थे। बारिश के दिनों में जंगल में कोई उपज नहीं होती इसलिए

ये इसके लिए पहले से अनाज बंदोबस्त करके रखते हैं।

हबीब केफी का 'गमना' (1999) आदिवासी की त्रासदी और शोषण की कथा है। तेजिन्दर का 'काला पादरी' (2000) उपन्यास में छतीसगढ़ के सरगुजा जिले के ओराँव या उराँव आदिवासियों की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में आदिवासियों के बीच सात दशकों का विस्तार लिए ईसाई मिशनरियों की भूमिका, आदिवासियों का धर्मांतरण, संकीर्ण धार्मिक हितों के लिए धर्म का उपयोग और राजनीति लाभ की गणना का सुंदर चित्रण हुआ है। श्री प्रकाश मिश्र का 'जहाँ बाँस फूलते हैं' (2001) उपन्यास में उत्तर पूर्व की मिजो जनजाति की अस्मिता, स्वतंत्रता व आर्थिक शोषण का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत उपन्यास में मिजोराम की संस्कृति, भाषा, भूगोल, जीवनचर्या, खानपान, प्रकृति, पहाड़ व पशु – पक्षियों की जीवंत व सार्थक चित्रण उपन्यास को मूल्यवान बनाता है।

मनमोहन पाठक का 'गगन घटा बहरानी' (1999) उपन्यास में आदिवासियों की जिंदगियों की अतीत, वर्तमान और भविष्य का चित्रण है। उरांव जनजाति के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवेशों का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। जमींदारी उन्मूलन के बाद भी क्षेत्र के जमींदारों के पास सैंकड़ो बीघे जमीन है, जहाँ आदिवासियों का उपयोग मजदूर या बंधुआ मजदूर के रूप में होता है तब उनके साथ जानवरों से बदतर व्यवहार किया जाता है। वीरेंद्र यादव के शब्दों में –''झारखंड के पलामू क्षेत्र का आदिवासी जीवन व संघर्ष इस उपन्यास में अपनी संपूर्णता के साथ उपस्थित है। ओराँव जनजाति की इस संघर्ष गाथा में आदिवासी जीवन का सौंदर्य, शौर्य, विवशता, सरलता, कुरुपता, अभाव व बदलाव की चेतना एक साथ उपस्थित है। यह समूचे प्रांतर तथा आदिवासी समाज के व्यक्तित्वान्तरण की औपन्यासिक गाथा है।:''[38]

जनजातीय समुदाय का जादू – टोना, जंतर – मंतर आदि में पूरा विश्वास होता है। अलग – अलग समुदायों में अलग – अलग प्रकार के जादू – टोने चलते हैं। 'जंगल के फूल' उपन्यास में गुंडाधूर जादू की करामतें दिखाकर भोले – भाले आदिवासियों को डराता है। सामान्यतः बीमारी में, बदला लेने के उद्देश्य से लोग जादू – टोना करवाते हैं। जंगल के फूल उपन्यास में

लेखक कहता है कि –''जो बांझ होती है, अपने कस्म को कोसती है, कंकाली की पूजा करती है। देवी – देवता मनाती है। जब देव प्रसन्न नहीं होते तो भूत – प्रेतों का सहारा लिया जाता है। आधी रात को वह बिल्कुल नंगी पीपल के नीचे जाती है और वहाँ दीप जलाकर प्रेत को बुलाती है और कहते हैं वहाँ से लौटकर कभी कोई स्त्री बांझ नहीं रह पाती।''[38]

मेहरून्निसा परवेज जी का कार्य क्षेत्र आदिवासी जीवन से जुड़ा है। इसलिए मध्यप्रदेश के वर्तमान छतीसगढ़ विशेषकर बस्तर के आदिवासी जीवन और समाज के प्रामाणिक चित्र उनकी कहानियों में मिलते हैं। अज्ञानता, अशिक्षा, रुढ़ियों एवं अंधविश्वासों के कारण आदिवासी बच्चे प्रायः व्यथ में भटकते हुए अपना बचपन गुजार देते हैं। आदिवासियों का जीवन आर्थिक रूप से विपन्न है। वे अपनी आजीविका के लिए प्रकृति, पशु – पक्षियों एवं खेतों पर निर्भर होते हैं। 'पसेरी भर जवानी' कहानी में लेखिका कहती है – ''बसोडों का पूरा अलग ही मोहल्ला है। घर – घर बिनते टोकने, सूप, आँगन में चरत मुर्गियाँ, छत पर गुटरते कबूतर, गली में पले हुए सुअर और धूल में लोटते हुए नंगे बच्चें। ओसारे में टोकने के झूले में पड़े बच्चे और टोकना बिनती माथे तक घूंघट किए बुंदेलखंडी गीत गाती औरत। घर – घर में झगड़े, वही समस्या, वही पीर। बच्चों का भूख से कुलराना – बिलखाना, बारिश – टूटी छतों को जोड़ना।''[40]

शराब बनाना और बेचना आदिवासी समाज का व्यवसाय है। 'टोना' कहानी की काकी कच्ची शराब बनाने और बेचना का कार्य करती है। उससे अपना घर खर्च चलाती है। ''इस छोटे से धनपुजी गाँव में काकी जाने कब से कच्चा शराब बेचने का धंधा करती थी। काकी के तीनों मरद भाग गए चौथी बार काकी इसी गाँव के कोतवाल का हाथ पकड़कर यहाँ आ गई। कोतवाल की आस औलाद नहीं हुई थी, तब डूमर – फूल (गूलर फूल) की तरह उसका जन्म हुआ था। कोतवाल के मरने के बाद से काकी शराब बनाने और बेचने का धंधा करने लगी थी।''[41] इससे स्पष्ट होता है आदिवासी परिवार के भरण – शोषण के लिए शराब बेचने का कार्य करे हैं। आदिवासी स्व आश्रित है पराश्रित नहीं है।

संजीव की कई कहानियों में आदिवासी जीवन का यथार्थ उनका

समाज, उनके रीति – रिवाज तथा उनके जीवन में होने वाले नाना परिवर्तनों को देखा गया है। 'टीस' कहानी के केंद्र में आदिवासी शिबुकाका है। गाँव में आदिवासियों की झोपडियाँ हटाकर खदान शुरु हो गई है। कारखाने के मालिक आदिवासियों को शराब पिलाकर, डराकर जमीन से बेदखल करते हैं। अधिकारी, क्लर्क मुआवजे की रकम खा जाते हैं। तब आदिवासी मजबूर होकर गाँव छोड़कर चले जाते हैं। गाँव छोड़ते आदिवासी को देखकर शिबुकाका कहते हैं – आज कनाई चला गया, आज खोखन..... आंज गंशा..... आज मनतोष। अब न माँदल बजेगे या, न बाँसुरी, ना झांझ, नागपंचमी उत्सव पिका – फिका रह जाएगा। पुजारी पंचानन भट्टाचार्य शिबुकाका की पत्नी मनाई से जबरन संबंध रखता है। यह देखकर शिबुकाका मताई का चाकू से खून करता है। परंतु पुजारी भाग जाता है। पुजारी जैसे लोग आदिवासी स्त्रियों के साथ अनैतिक संबंध रखते हैं। इसी प्रकार आप यहाँ है, ऑपरेशन जोनाकी, दुनिया की सबसे हसीन औरत, टीस, जीवन के पार और लिटरेचर कहानियों आदिवासी जनजीवन का चित्रण संजीव ने किया है। संजीव ने अपनी कहानियों में आदिवासी जनजीवन और उनकी शोषण की सूक्ष्म चित्रण किया है।

आदिवासियों के विविध जीवन संघर्षों, शोषण, अभावों के विविध रूपों, अशिक्षा के कारण प्रचलित रुढ़ियों और अंधविश्वासों, सांस्कृतिक निष्ठाओं, सामाजिक संगठन के स्वरूपों और जीवन निर्वाह के साधनों आदि का प्रभावपूर्ण चित्रण है। जल, जंगल इनकी दृष्टि में व्यक्तिगत संपत्ति न होकर सामुदायिक संसाधन है। आदिवासी जनता आर्थिक क्षेत्रों में भी संघर्ष और चुनौतियाँ का सामना कर रही है। जंगल की हर चीज से उन्हें गहरा लगाव है। आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थितियों पर रचनाकारों ने सूक्ष्मता के साथ यथार्थ चित्रण किया है। आदिवासी समाज जीविका निर्वाह के लिए पूरी तरह जंगल पर निर्भर है।

2.11 कृषि जीवन –

आदिवासियों के कृषि परंपरा आदिकाल से चली आ रही है। आदिवासी प्रारंभिक कृषक बने, बहुत लंबे समय तक ये जंगलों और पहाड़ो के पिछवाडे रहकर त्रासदी जीवन बिताते रहे। कृषि उनके आर्थिक जीवन की एक

महत्वपूर्ण घटना है। आज से आठ – दस दशक पहले भीलों की अर्थ व्यवस्था जंगल तथा जंगल के उपज पर निर्भर थी। शासन के दबाव के कारण धीरे – धीरे भील कृषि गाँवों में बस गए। उन्होंने बारिश में खरीफ की फसल को लेना प्रारंभ किया। भील वर्ष में केवल एक फसल लेता था।

आदिवासियों ने जंगल की लकड़ी और उसकी उपज से जीवन निर्वाह करके फखक्कड जीवन बिताती रही। ब्रिटिश राज में भी जंगल में रहने वाले सेहरियाँ आदिवासी केवल जंगल की उपज और आखेट से जीविकोपार्जन करते थे। अन्य भील, मीणा, डामोर आदिवासियों के मुकाबले में इन्होंने खेतों को अपनाएँ हुए 60 – 65 वर्ष से अधिक नहीं हुए। खेती का प्रारंभ भी इन्होंने स्थान्तरण खेती या डांडा काश्त खेती से जिसमें जंगल को जलाकर खेती करते थे।

आज भीलों ने नकद फसलों को लेना प्रारंभ किया है। गन्ना,तम्बाकू , कपास तथा रेशम के कीडे पालने का काम भील कुशलता से कर लेते हैं। सिंचाई के कारण आज प्रगतिशील भीलों ने वर्ष में तीन फसल तक लेते हैं। इन्हीं भीलों में ऐसे समूह भी है जो शहरों में रहते हैं और कल – कारखानों में काम करते हैं। इनका मुख्य भोजन मक्का, बाजरा एवं कुछ दालों का होता है। जंगली अनाज में कोदरा, सामा का आहार प्रधान है। जीविको पार्जन के बाद जो कुछ अतिरिक्त उसके पास बचता था। उसे बेचकर वह दिन प्रतिदिन की आवश्यकता पूरी करता था। उसकी यह जीविकापार्जन अर्थव्यवस्था थी। आर्थिक दृष्टि से इस अवस्था में आकर भीलों में पहली बार वर्ग बने। एक वर्ग वह था जिसने मैदानी गाँवों में रहना प्रारंभ कर दिया। भीलों के इस वर्ग को ग्रामीण भील कहते हैं। दूसरा वर्ग भीलों का था जिसने खेती को एक व्यवसाय के रूप में अपना लिया। इसे खेतीहार भील कहलाता है। तीसरे वर्ग में वे भील है जो पहाड़ों, जंगलों में रहते थे। और जिनका मैदान की सभ्यता से बहुत कम संपर्क था, इस वर्ग को पहाड़ के भील कहते हैं।

गुजरात के लगे सीमावर्ती गाँवों में डामोर आदिवासी खेती करते आये हैं। इनके पास कृषि योग्य भूमि बहुत कम है। एक परिवार के पास तीन – चार बीघा जमीन से अधिक नहीं। यदि वर्षा हुई तो वर्ष में दो फसले ले लेते हैं।

खरीफ फसल में ये आदिवासी दाले और मक्का पैदा करते हैं। कहीं – कहीं मूँगफली की फसल भी लेते हैं। रब्बी की फसल में मुख्यतः चने लिये जाते हैं।

आज आदिवासी जमीन को लेकर बड़ी समस्या में है। उनके कब्जे में वैसे ही जमीन थोड़ी थी वह भी उनके हाथ से निकल रही है। सरकार ने भूमि संरक्षण का कानून बनाया है फिर भी आदिवासियों के हाथ जमीन बेच नकद या बेनामी बिक्री द्वारा आदिवासी जमीन से बेदखल हो रहा है। इनमें अपेक्षित रूप से संपन्न आदिवासी थोड़े दामों में गरीब आदिवासी की भूमि को गिरवी रखलेता है या खरीद लेता है। खुले बाजार में जमीन के जो दाम मिलने चाहिए गरीब आदिवासी को नहीं मिल पाते। आम किसानों की तरह आदिवासियों की जमीन का भी बराबर दर पीढ़ी – दर – पीढ़ी विभाजन हो रहा है। आदिवासियों में मुख्य व्यवसाय आज कृषि नहीं रहा उसका दर्जा सहायक धंधों में आ गया है। आदिवासियों ने जीवन यापन के लिए कृषि को प्राथमिक व्यवसाय की तरह अपनाते हैं। आज कृषि प्रधान आदिवासियों का प्रतिशत बहुत कम होता जा रहा है।

मान्सून की अनिश्चितता के परिणाम स्वरूप भूमि की जोत में निरंतर कमी के कारण आदिवासियों की अर्थ व्यवस्था में अनेकता आयी है। आरक्षण कोटे से किसी न किसी व्यवसाय में लग गए हैं। कृषि मजदूर या सड़क तथा भवन निर्माण में दिहाड़ी पद पर काम करते हैं। कुछ आदिवासी साइकिल की मरम्मत, छोटी मोटी चाय की दुकान, ईट भट्टा, रेशम के कीड़े पालने का व्यवसाय आदि करने लगे हैं।

कुछ आदिवासी औद्योगिक क्षेत्रों में जाकर कारखानों, होटलों, घरों में मजदूरी का काम करने लगे हैं। जैसे सूरत, इंदौर, अहमदाबाद, नडियाद आदि औद्योगिक क्षेत्र में काम करते हैं। आदिवासी समुदाय में सहकारिता की भावना कई अवसरों पर देखने को मिलती है। जब कृषक भील को खेत की कटाई, बुवाई करनी होती है वह श्रमदान के लिए गाँव के अन्य परिवारों को आमंत्रित करता है। आमंत्रित परिवार मिलकर खेती की कटाई, बुवाई कर मेजमान द्वारा दिया एक समय का भोजन कर संतुष्ट अनुभव करते हैं। जंगलों में रहते हुए

इनके पास जड़ी – बूटियों के उपयोग तथा विभिन्न प्रकार की व्याधियों के उपचार की गहरी जानकारी है।

आदिवासी शहरों में प्रवासी बन जाना आज के संदर्भ में कृषि नाममात्र की है। आदिवासियों के लिए कृषि काफी थी लेकिन आज इनके हाथ से निकल रही है। आदिवासियों की बहुत बड़ी समस्या उनका गैर – कृषि व्यवसायों में प्रवेश करना है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः स्पष्ट है कि आदिवासी साहित्य में घिनौनी राजनीति, दलबंदी, जातिवाद, ईर्ष्या – द्वेष, भ्रष्टाचार, घुसखोरी, जड़ता, अंधविश्वास, स्वार्थ और गाँवों की टूटन तथा आपसी रिश्तों का खोखलापन ही है, बल्कि स्वतंत्रता के बाद आदिवासियों में एक नया आत्मविश्वास, संघर्षशीलता, अपने अधिकारों के प्रति सजगता, अंधविश्वास, अन्याय, अत्याचार आदि का चित्रण हुआ है।

आदिवासी मूलतः वनों में रहनेवाले एवं वनों पर ही अपनी उपजीविका चलाते हैं। आदिवासियों में अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता की अधिनता दिखाई देती है। आदिवासी हमेशा नशा करते हुए दिखाई देते हैं। जमींदार, पुलिस, समाज एवं शासन के द्वारा इनका शोषण होता है।

आदिवासियों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषतः सामूहिक रूप से कार्य करना है। यह आदिवासी पहाड़ो, वनों, जंगलों में निवास करते हैं। वन ही इनकी उपजीविका का प्रधान साधन है। भारत में संथाल, थारू, नागा, करनट, नट, बंजारा, चेंचु, बँगा, खारिया, भुइया, गोंड, हो, भील, भोकसा आदि प्रमुख आदिवासी जन जातियाँ है। झारखंड, मध्यप्रदेश, बिहार, मिझोराम, अल्मोड़ा, बस्तर, असम, नागालँड, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तरांचल और पूर्वी महाराष्ट्र आदि विभिन्न अँचलों में आदिवासी जनजातियाँ निवास करती है। आदिवासी विशिष्ट भू–प्रदेश, जंगल तथा पर्वतीय क्षेत्र में वास्तव करते हैं।

–: संदर्भ सूची :–

1. संजीव – धार, पृ. 33
2. वही, पृ. 127
3. समकालीन हिंदी कहानी – स्त्री पुरूष संबंध – सुमंत कौर, पृ. 107
4. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.80
5. हिंदी में आदिवासी जीवन में केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन – डॉ. बी.के. कलासवा, पृ. 102
6. जंगल के आसपास – राकेश वत्स, पृ. 160
7. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ. 298
8. अग्निबीज – मार्कंडेय, पृ. 131
9. महर ठाकुरों का गाँव – बटरोही, पृ. 8
10. विवेकीराय – सोनामाटी, पृ. 86
11. शैलूष – शिवप्रसाद सिंह, पृ. 138
12. वही, पृ. 258
13. अपने लोग – रामनाथ यादव, पु. 110 – 111
14. विकल्प – रामदेव शुक्ल, पृ. 09
15. पिंजरे का पन्ना – मणि मधुकर, पृ.66
16. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पु.239
17. कब तक पुकारूँ – रांगेय राघव, पृ.99
18. कथाकार रांगेय राघव – डॉ.कमलाकर गंगावने, पृ.227
19. आँचलिक : सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ – डॉ.विमलशंकर नागर, पृ.204
20. महर ठाकुरों का गाँव – बटरोही, पृ. 11 – 12
21. विकल्प – रामदेव शुक्ल, पृ.9
22. वनतरी – सुरेशचंद्र श्रीवास्तव, पृ.41
23. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ.437
24. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.22
25. युद्धरत आम आदमी – सं.रमणिका गुप्ता, पृ.9, जनवरी, 2014.

26. वही, पृ.9
27. पहाड हिलने लगा, वाहरू सोनवणे, पृ.19
28. आजादी के बाद आदिवासी ने क्या हासिल किया, स्मारिका, पृ.72
29. आदिवासी साहित्य विमर्श – सं.गंगा सहाय मीणा, पृ.143
30. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी – सं.रमणिका गुप्ता
31. नन्हें सपनों का सुख – सरिता बड़ाइक, संस्करण, 2013
32. वही, सं. 2013
33. पूर्वोत्तर : आदिवासी सृजन स्वर – सं.स्मणिका गुप्ता
34. वही
35. अपने घर की तलाश में – निर्मला पुतुल सं. 2005
36. अस्तित्व के लिए लड़ते हुए – डॉ.रामदयाल मुण्डा, अरावली उद्‌धोष, अंक – 93, पृ.10
37. दस्तावेज – 92, जुलाई – सितंबर, 2001, पृ.11
38. आलोचना – जुलाई – सितंबर, 2001, पृ.37
39. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ. 118
40. मेरी बस्तर की कहानियाँ – मेहरून्निसा परवेज, पृ.31
41. वही, पृ.30 – 31

तृतीय अध्याय

सांस्कृतिक संदर्भ में आदिवासी जनजीवन

प्रस्तावना –

जन संस्कृति आम आदमी की जिंदगी से जुड़ा संस्कार होता है। प्रत्येक व्यक्ति उसके अनुसार जीवनयापन करता है। धार्मिक – सांस्कृतिक विरासत भारतीयता की आत्मा है। यह विश्वबंधुत्व, विश्व – संस्कृति का रक्षक है। यहाँ रहनेवाली हर जाति अपनी – अपनी संस्कृति को सुरक्षा प्रदान कर रही है। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथ, आदर्शता की परिभाषा कर रहे हैं। धार्मिक ग्रंथ लोकसंस्कृति के पथदर्शक रहे हैं। आदिवासी समाज अज्ञानी, अंधश्रद्धा, शोषित, प्रगत समाज से दूर, प्रकृति की गोद में पलनेवाला, भारतमाता की सपूत है।

आदिवासी जनजातियों में अज्ञान, अंधश्रद्धा के कारण रूढ़ि – प्रथा है। अग्निप्रथा, बलिप्रथा, बहुविवाह, नशापान, जातपंचात, भोज देना आदि प्रथाएँ शोषण का आयाम है। विधवा – विवाह, गुलाल मलना, विक्रम संवत मानना अच्छी प्रथा है।

भारतीय आदिवासी समाज में लोक संस्कृति के विविध उपादान अत्यंत विकसित आसाी में पाए जाते हैं। आदिवासियों की परंपरा में लोकनृत्य, लोकगीत एवं लोकवार्ताओं का बड़ा महत्व है। आदिवासियों के लोकगीत एवं लोकनृत्य की समृद्धता भारत के सर्वाधिक विकसित आधुनिक कलाकारों को भी प्रेरणा एवं वैभव प्रदान कर सकती है। भारतीय आदिवासी समाज में लोक संस्कृति की उत्कृष्ट एवं समृद्ध परंपरा है।

3.1 लोकनृत्य –

बस्तर के गोंड आदिवासी नृत्य के समय अपने आपको कोई विशेष अंदाज में प्रस्तुत करते हैं। बस्तर का जन – जीवन, जंगल, जानवर, जनजाति जितने आकर्षक और लुभावने है। सिर पर गोर के सींग और उन पर वन्य पक्षियों रंग – बिरंगे पंखो के तुर्रे जैसी 'कलंगी' आँखो के सामने झूलते हुए

सभी खूब – सूरती के साथ अपने नृत्य से दूसरों को भी थिरका देता है। गोंड आदिवासी लोगों के नृत्य की गति वाड़यंत्रों के साथ – साथ होती है। और पुरूष एक दूसरे के हाथ की जोड़ी बनाकर चारों ओर घेरा बनाकर नृत्य करते हैं। ''देखते – देखते वहाँ नाच – गाने का खासा मजमा जम गया। मजमें में जब जब खो गए तो खुलकसाए ने गले से ढोल का फंदा निकालकर फगरू के गले में डाल दिया। फगरू के नंगे हाथ ढोल के चमड़े पर थाप देने लगे।''[1] बस्तर का जन – जीवन, जंगल, जानवर, जन – जाति जितने आकर्षक और लुभावने है उससे कहीं अधिक मोहक और आकर्षक नृत्य है। राजेंद्र अवस्थी गोंड आदिवासियों के नृत्य के संबंध में लिखते हैं – ''पर एनदाना देखते – देखते शायद वह अपने को भूल चुका था। अपने पैरों में समाई अतीत की झंकार, पहाड़ी झरने की तरह निकल पड़ी थी। नाचते – कुदते वह अफसर के सामने तक आ गया, तो अफसर को एकदम हँसी आ गई। वह जोर से अपने आप हँस पड़ा और उठकर खड़ा हो गया। उसके शरीर में एक अजीब गरमी आ गई थी। .....वैस उसके पैरों में थिरकन बराबर देखी जा सकती थी। कट्टुल पर बैठी रहना उसके लिए जैसे मुश्किल हो रहा था।''[2] 'पार' उपन्यास जीरोन खेरा के आदिवासियों को केंद्र में रखकर लिखा गया है। राउतों में शादी की रस्म को बिलकुल अनूठे ढंग से मनाया जाता है। गाँव के पवित्र थान गौंड बाबा की देहरी समक्ष उपस्थित किया जाता है। वहाँ ढोल की तान पर रास रंग पूरी रात तक चलता है। ढोल और गीतों से आकाश गूँज उठता है। वीरेंद्र जैन लिखते हैं –''दुनिया की तरफ से 'हाँ' होते ही मुखिया ने गौड बाबा के थान पर पढ़ना गढ़वा दिया। खेरे में बीसों बार ढोल पिटवा दिया। ढोल के संग साथ डोर बंधने की उम्र पाई चार मौढ़ियन की फेरी फिरवा दी। दिन तय कर दिया। पूरे चाँद की रात ढोर बंधाई की रस्म होगी।''[3] ढोल और गीतों के स्वर आकाश गुँजते रहे।

मैत्रेयी पुष्पा जी रचित 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में लोकनृत्य का चित्रण हुआ है। आदिवासी कबूतरा जाति घुमक्कड़ होती है। सुबह से लेकर शाम तक वे लोंग मजदूरी, शिकार चोरी, डकैती आदि में रचे – पचे ताक लगाते रहते हैं। दीपावली का अवसर हो या होली का इन अवसरों पर इन्हें

कभी – कभी भूखे भी रहना पड़ता है। भूखे रहकर भी लोग आनंद के साथ हँसते हुए त्यौहारों को मना लेते हैं। वे लोग त्यौहारों में समूह में नृत्य करते हैं। इस नृत्य में दस से बीस – तीस नर्तक और वादक हिस्सा लेते हैं। नृत्य की गति वाद्ययंत्रों के साथ – साथ होती है। पुरूष और स्त्रियाँ चारों ओर घेरा बनाकर नृत्य करते हैं। ढोल की लय पर गीत गाते हैं। जैसे –

''मोरी चंदा चकोर, काजर लगा के आ गई भोर ही भोर
मेरी चंदा चकोर, छतिया पै तोता, करिहा पै मोर
मेरी चंदा चकोर, चोली में निबुआ घँघरा घुमरे।''[4]

3.2 लोकगीत :–

लोकगीतों के द्वारा आदिवासियों का उल्लास प्रकट होता है। राजेंद्र अवस्थी जी 'जंगल के फूल' उपन्यास के प्रारंभ में गोंड आदिवासियों का लोकगीत प्रस्तुत करते हैं। जैसे –

''रे रे रेलो रे रेलो रे,
रेला रे रे रे रेला रे ए ए ए।''[5]

गोंड आदिवासियों में 'घोटुल गीत' अपना एक विशिष्ट महत्व रखता है। घोटुल में गोंड पुरूष और महिलाएँ मिलकर गाना गाते हैं। 'जंगल के फूल' में अंग्रेज अफसर के स्वागत में गोंड आदिवासियों द्वारा स्वागत गीत गाया गया है। जैसे –

''तैना नामुर ना मुर रे ना रे ना ना
तुभी नाका जोड़ा डोंगा, हामी ना कुंदे खड़क सरकार चो
रैयत के दंड पडली दरभा ठाना चो सड़क
हो तै ना ना मुरडड।''[6]

आदिवासी साहित्य घने वनों जंगलों में रहनेवाले मानवों की संस्कृति से जुड़ा साहित्य है। उस साहित्य में वेदना है, विद्रोह है और अपने ढंग की अभिव्यक्ति भी है। आदिम पुत्रों को वन – जंगलो, गिरि कुहरों में कैद करनेवाली व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना महादेव टोप्पो की इन पंक्तियों अभिव्यक्त होती दिखाई देती है –

''जब जंगलों की। सारी विद्रोही आवाजों को

जंगल के पेढ़ों के हरेपन को। हरे भरे होकर सीना तान
पहाड़ो पर घाटियों में। उगने लहराने की
उनकी आकांक्षाओं को। महुए की बोतल में
डुबोने की ही साजिश। इस जंगल का कवि
रहेगा भला कैसे चुप।''

प्रत्येक आदिम जनजाति का अपना विशेष तथा परंपरागत लोकसाहित्य है जो विविधता से परिपूर्ण है। इनके प्रत्येक गीत के पीछे श्रध्दालु, मन – प्रवृत्ति, आचरण पद्धति, सामाजिक संक्रमण, ईश्वर – परस्ती, अंधविश्वास, रूढ़ि, परंपरा, संस्कृति में होने वाले नवीन बदलाव, शहरीकरण, स्त्री – पुरूष भेद, रिश्ते नातों से संबंधित अनेक बातें दिखाई देती है। भिन्न – भिन्न रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श के सौंदर्यपूर्ण, फल – फूल, तला – गुल्मख, पशु – पक्षी, कोट–पतंग आदि उन गीतों के नायक–नायिकाओं के प्रतीक हुआ करते हैं। जिसे निर्मला पुतुल की संथाली लड़कियों के बारे में कहा गया है कि –

''ऊपर से काली। भीतर से अपने चमकते दातों
की तरह शांत धवल होती हैं वे। वे जब हँसती है
फेनिल दूध सी निश्छल हंसी।
तब झर – झरकर हँसती हंसते हैं
पहाड़ की कोख से मीठे पानी के सोते
जुड़े में खोंसकर हरी पीली पत्तियाँ
जब नाचती है कतार बध्द। मांदल कीर थाप पर
आ जाता तब असमय बसंत।''

3.3 शृंगार एवं गूँदना –

आदिवासी सभ्य समाज के संपर्क के कारण उनके आभूषण प्रियता में थोड़ा बदलाव दिखाई देता है। आभूषण के अतिरिक्त शरीर को अलंकृत करने के लिए उस पर कलात्मक चित्र बनवाती है। राउतों में शरीर को गोंदने का व्यवसाय प्रमुखतः नारियों द्वारा किया जाता है। गूँदना स्थायी आभूषण के रूप में रहना है। अपने पति को प्रसन्न करने हेतु गूँदवाना अनिवार्य माना जाता है। राउतों में गूँदना गुँदवाने की परंपरा पर दृष्टिपात करके वीरेंद्र जी लिखते है –

''लेकिन जब – जब कोई गूँदना गुँदवाने आती है उसके पास, मौढ़ी नहीं जनी तब अपनी दशा पर फूली नहीं समाती फुलिया। तसल्ली पाती है। तब सोचती है कि भली रही जो मैं राग से निबटी। नही ंतो मोए भी अपने जन को रिझाने, तपाने की खातिर नित नए गूँदना गुँदवाने होते अंग – अंग पर।''[7]

गूँदना आदिवासी समाज में अपना एक विशिष्ट महत्व है। गूँदना सौंदर्य – वृद्धि का तो एक विशिष्ट साधन माना जाता है। मछली, साँप, सूर्य, चंद्र आदि चित्र उनके शरीर पर गोंद दिए जाते हैं। जिस युवती के शरीर का अधिक गोंदा जाय वही युवती अधिक से अधिक सुंदर समझी जाती है। ''शरीर गुँदना जरूरी है। जिसकी देह में जितने ज्यादा गुँदने होंगे, वह उतनी ही सुंदर होगी।'' गुँदने का काम ओझा जाति के लोग करते हैं। 'जंगल के फूल' उपन्यास में अवस्थी जी लिखते हैं – ''ओझा पीतल की एक लम्बी सुई दीये में रखे काले पदार्थ में डुबोती और लड़की की जांघ में घुसेड देता। वह जोर से चिल्ला उठती, 'ऊ इ इ इ मा ड ड ड।''[8] जंगल के निवास करनेवाले आदिवासी लोग अपनी जीवन रक्षा के लिए जिन देवी – देवताओं का स्मरण करते हैं, उन्हीं का चित्र मुख्य रूप से गोदने में किया जाता है। ''मत रो बेटी, ये गुँदने से तेरी सुंदरता में चार चाँद लगा देंगे। तुझे अच्छे से अच्छा प्रीतम मिलेगा। दुनिया भर के चेलिक तुझे प्यार करेंगे, पर तू उनमें से संभलकर चुनाव करना और मरने के बाद यही गुँदने तुझे नरक की यातना से बचाएँगे। तब देवता तेरी छाती में भाला नहीं घुसेडेगा।''[9]

आर्थिक दरिद्रता के कारण आदिवासी महिलाएँ कम आभूषण पहन पाती है। आदिवासी महिलाओं का मुख्य आभषण मालाएँ ही हुआ करती है। अवस्थी जी लिखते हैं – ''उसके गले में डगरपोल (गुरियों की माला, जो चेलिक को उसकी प्रेमिका मोटियारी भेंट करती है।) होता है। कान में छोटी – छोटी बोलियाँ। वह कभी न ये वालिया खरीदता, न डगरपोल। वह अपनी मोटियारी को प्रेम की भेंट देता है तो मोटियारी से भी इन्हें भेंट के रूप में देता है तो मोटियारी से भी इन्हें भेंट के रूप में पाता है। इस हाथ से दे, उस हाथ ले। न कभी देर, न कभी अंधेर।''[10]

आदिवासी समाज की अपनी एक विशेषता होती है कि अधिकांश

धार्मिक संस्कार पर्वों के रूप में मनाये जाते हैं। 'लाडूकाम' पर्व के अवसर पर गोंड आदिवासियों द्वारा नारायण देव की पूजा होती है। 'जंगल के फूल' में राजेंद्र अवस्थी जी लिखते हैं – ''सिरहा नारायण देव की पूजा में खो गया। दो – चार मंत्र पढ़ने के बाद उसने देवताओं को धूप दी। सारे लोगों की आँखे सूअर पर अटक गई। वह जमीन में मुँह लगाए पहले की तरह खड़ा था और सारे चावल उसी तरह बिखरे थे। सिरहा के चेहरे पर चिंता की रेखाएँ उभरी। उसने देवता का नाम लेकर नारियल फोड़ा। उस पर लांदा चढ़ाई। मंत्र द्वारा वह सुअर की चेतना जगाने लगा। सूअर मंत्र के प्रभाव से झूम उठा। चावल के दानों को समेटने के लिए उसने जैसे ही मुँह खोला, सुलकसाए ने आगे बढ़कर उसकी पूछ काट ली। पूँछ के कटते ही नारायण देव की आत्मा सअर पर उतर आई।''[11] नारायण देव के अलावा गोंड आदिवासी लोग आंगा देव को भी प्रतिष्ठित देवता के रूप में मानते हैं। आंगा देव की पूजा बसर के उत्तरी क्षेत्र में होती है।

आदिवासी समाज के व्यक्ति पूर्वजों एवं परंपरागत देवताओं की पूजा अवश्य करते हैं। 'धार' उपन्यास में सौंताल आदिवासियों का सबसे बड़ा देव मारांबुरू का उल्लेख मिलता है। उपन्यास की नायिका मैना मजदूरी का केवल संकेत मिलने पर माराबुंरू की कृपा समझती उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करती है। माराबुंरू के अलावा सौंताल आदिवासियों में बधना देवी, कालीमाई, हनुमान, सर्वमंगला देवी एवं अलग – अलग प्रकार के ग्राम देवताओं का उल्लेख मिलता है।

आदिवासी जनता के मनोरंजन के लोकनृत्य, लोकगीत, लोकवाद्य, पर्व – उत्सव आदि समाविष्ट है।

3.4 जन्म संस्कार एवं नामकरण :–

तड़वी भिल्ल समाज में बच्चे के जन्म के पाँचवे दिन विधिवत पूजा की जाती है। प्रस्तुत विधि में स्त्रियाँ सक्रिय होती है। उनके नामकरण में हिंदू एवं मुस्लिम दोनों धर्मों का प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है। जैसे भिकन, बबन, भिकारी, आखडू, सद्दाम, अन्वर, जुम्मा, उस्मान, हैदर, अमीर, सलीम, गुलाब, मदन आदि नाम लड़को के तथा रूक्साना, सकीना, भिकुबाई, वसंताबाई,

गोदाबाई, अंजनाबाई, अमीना, रूबीया, शबाना आदि लड़कियों के नाम रखे जाते हैं। संपूर्ण तड़वी भिल्ल समाज में इस तरह के नामकरण दृष्टिगोचर होते हैं।

बाँसगड़ा के आदिवासी अपने – अपने धार्मिक पर्वों और उत्सवों को पूरे उल्लास के साथ मनाते हुए दृष्टिगोंचर होते हैं। उस समाज में जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध प्रकार विधि – विधान हुआ करते हैं।

3.5 पोशाक –

हमारे देश में एक तरफ गरीब उपेक्षित एवं दलितों की अर्थहीन वैराग्य संस्कृति है तो वही दूसरी ओर पूँजीपतियों एवं प्रभुवर्ग की भोगवादी संस्कृति है। जन – संस्कृति की रक्षा का दायित्व हमारे बुद्धिजीवी साहित्यकार पर है। शानी जी के 'साँप और सीढ़ी' उपन्यास मूलतः मध्यवर्ग की समावेश हुआ है। मध्यवर्ग पाश्चात्य वेश – भूषा से ज्यादा प्रभावित है। शानी जी ने मध्यवर्गीय फैशनपरस्ती पर व्यंग्य करते हुए 'एक लड़की की डायरी' उपन्यास में लिखा है – ''रांड बेवा जैसी पोशाक और नंग – बूने हाथ क्यों वो, यह चूडियाँ न पहनना भी क्या आजकल का रिवाज है.....? और वह कलमुँही कौन है जो खासा बड़ा जूँड़ा बाँधकर, अपनी छाँव देखती हुई मटक – मटक कर चलती है?''[12]

बस्तर के गोंड आदिवासियों के नर्तक संबंधी पोशाक अत्यंत आकर्षक होती है। ये लोग अपने सिर पर गौर पशु के सींगों तथा मोर पंख को धारण करते हैं। 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोरे अधिकारी द्वारा आदिवासी नर्तकों को देखा जाता है। ''पुरूष ने सिर पर मोर पंख और जंगली भैंसे के सींग बाँधे थे।''[13]

कबूतरा जनजाति का पोशाक अलग प्रकार का होता है। इनका पहनावा घाघरा – चोली होता है। लेखिका लिखती है –''गोरा उजला चेहरा छोटा माथ, सुतवा नाक। नाक में नगजड़ी मैली – सी लौंग। आँखों में चमकदार नजर अण्डाकार चेहरे की नुकीली ठोंडी पर गुदने की बूँद।''[14] छोटे बच्चे लंगोटी तथा जालिदार बनियन ही पहनते हैं।

3.6 त्यौहार :–

उत्सव पर्व त्यौहार का भारतीय समाज में महत्व रहा है। अंधविश्वास,

धार्मिक भाव, पाप – पुण्य की मान्यता उत्सव पर्व के साथ जुड़ी है। डॉ.रामनाथ शर्मा के अनुसार – ''धार्मिक शिक्षा देना, सामाजिक संगठन बनना, मनोरंजन करना, संस्कृति का ज्ञान देना, एकता को बढ़ाना, यात्रा करना, आत्मशक्ति पाना आदि उद्‌देश्य है।''[15]

आदिवासी सूर्य – पूजा, चंद्र पूजा, वृक्ष पूजा, पशु – पक्षी वंदना, पर्वत – आराधना, जलाशयों के प्रति श्रद्‌धा निवेदित कर प्रकृति के प्रति अपना सात्विक भाव अर्पित करते हैं। आदिवासियों के उत्सव – पर्व, जंगल, वन, भूत – प्रेत, देवी – देवता, पूर्वजों से संबंधित है। इसमें अनेक प्रथाओं का निर्वहन किया जाता है। नशापन, बलिप्रथा की अधिकता यहाँ लक्षित होती है। 'जंगल के फूल' में बस्तर के गोंडो की सामाजिक – सांस्कृतिक जीवन का प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत हुआ है। लाडू काज पर्व में नारायण देवता की पूजा करना, कारापाण्डुम में नार देवी को मुर्गी, बकरी की बलि चढ़ाना, नुकानोर दाना पाण्डुम में हर वर्ष सोना उगाने की प्रार्थना करना, शालवानों की द्वीप में माडिया गोंड द्‌वारा बीमारी को रोकने के लिए माता बिदाई पर्व का आयोजन करना, सती मइया पर्व, खुम्हखेड़ा देवी का नवरात्र आदि चित्रण 'जंगल के फूल' उपन्यास में हुआ है। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में करनटों द्‌वारा होली, दीवाली का होना, 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में सहोदर माई के पर्व से नंगे पाँव नाचना, 'जंगल के दावेदर' उपन्यास में फूलों का बा – परब उत्सव मनाया जाता है। विजयादशमी, अक्षयतृतीया, नागपंचमी, दीवाली, मोहर्रम, रमजान, बकरी ईद आदि उत्सव बहुत उत्साह से मानते हैं।

3.7 खान – पान – रहन – सहन :–

आदिवासी जंगलों के निवासी है। घास फूस से बनी झोपड़ी, धोती, पगड़ी, घागरा, गले में माला पहनना, माँस खाना, शराब पीना आदि खानपान रहन – सहन है। 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोंडों का चावल कंद से भोजन बनाना, माँस खाना, शराब पीना, नारियों द्‌वारा शरीर गुदना, लाल रंग की मालाएँ पहनना, कलाई में मोटे कड़े, कानों में बालियाँ, कमर तक धोती पहनना आदि का चित्रण हुआ है। 'वनवासी' उपन्यास की नागा स्त्री कमर के ऊपर नंगी, कानों में काँच के छल्लों, गले में कौ़यिरों की मालाएँ आदि पहनती है।

'साँप और सीढ़ी' उपन्यास में सौगा, साल, शीशम, तेन्दू के पेड़ो से भरे जंगल, खपरैल मकान में धान माँ रहती है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में घना जंगल, पहाड़, गन्ने के खेत इसमें थारू जनजाति रहती है। शुद्ध पानी, अच्छा भोजन का अभाव, कुपोषण के कारण अनेक बीमारियाँ पहाड़ी अंचलों में रही है।

3.8 मृतक संस्कार :–

विवाह के समान मृतक संस्कार भी जीवन की पूर्णता का प्रमाण है। संस्कृति में कला, धर्म, दर्शन, संस्कार आदि से संबंधित मूल्यवान सामग्री प्राप्त होती है। पुनर्जन्म पर श्रद्धा रखनेवाली भारतीय संस्कृति है, जिसमें मृत्यु को भी महत्व दिया है। अग्नि संस्कार, दफन संस्कार में भेद है। मृतक संस्कार में भी अपनी विरासत, प्राचीन धरोहर की रक्षा आदिवासी जनजातियाँ कर रही है। 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोडों में मृत्यु के बाद ढोल बजाना, देवता की पूजा करना, मुर्गी की बलि देकर खून से गडढे को पवित्र करना, नाच – गान, शराब – पान होना, पत्थर पर मृतक के जिंदगी के कारनामे खुदवाना आदि रूप में मृतक संस्कार संपन्न होता है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' बिसराय की लड़की की मृत्यु होने से लाश को गंगा नदी में फेंक दिया जाता है। 'मोरझाल' में भील जनजाति में अग्नि संस्कार करना, पाँच दिन तक मृतक के लिए घाट पर भोज ले जाना, स्मारक बनाना, वहाँ गाय की मूर्ति रखकर पुरोहित द्वारा हिलाना मृतात्मा का स्वर्ग में पहुँचना आदि का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में हुआ है। आदिवासी जनजाति में मृतक संस्कार में सामूहिकता, भोज, बलि, वृक्षारोपण आदि विशेषता है। नागा जाति मृतक के साथ अगला यात्रा के लिए दो भाले दफनाते हैं। झाड़ – फूक, जादू – टोना, ओझा की सहायता, डायन संबंधी धारणा, बलि प्रथा आदि का दर्शन होते हैं।

3.9 लोककथा :–

लोकगीत के समान लोककथाएँ हैं। भारत में लोककथाओं को स्त्रोत प्राचीन है। नीतिकथा, जातक कथा, पंचतंत्र कथा, पशुपंछी की कथाएँ लोकप्रिय है। आदिवासियों में पुरखों की कथा, भूत – पिशाच्च डायन की कथा, देवता की कथा, जंगली जानवरों की कथा, शिकार कथा, चुड़ैल कथा, राजा की कथा, तालाब की कथा, चेतीक की कथा, रेवती की कथा, मृताम्मा की कथा, गोदने की

कथा आदि कई लोककथाएँ प्रचलित हैं। राजेंद्र अवस्थी कृत 'जंगल के फूल' उपन्यास में बस्तर की भूत – प्रेत, जादू – टोना, देवी – देवता संबंधी कथाएँ प्रचलित है। शेर और बैल की कथा, जादू – टोने की देवता, पुरखों के पराक्रम की कथा, झिरिया की कथा, नंदी और राजकुमार आदि कथाएँ प्रचलित है। 'साँप और सीढ़ी' उपन्यास में जंगली जानवर, हाथी के आतंक की कथा आदि।

आदिवासियों ने आज भी अपनी विरासत के रूप में लोककथाओं की रक्षा कर रहे हैं। लोकभाषा बोली के माध्यम से सामान्य लोकजीवन में प्रचलित विश्वास, आस्था, परंपरा, मान्यता, उत्सव – पर्व पर आधारित कथा लोककथा बनती है।

निष्कर्ष :–

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आदिवासी समाज जाति – प्रथा पर श्रद्धा रखता है। आदिवासियों की समाज व्यवस्था वनों, जंगलों पर निर्भर है। देवी – देवता, हिंदू देवता के समान तथा जंगल से संबंधित है। बलि प्रथा का व्यापक प्रभाव है। जात, गोत्र का संबंध संस्कार से जुड़ा है। मातृसत्ताक पद्धति, लड़की के पिता को धन देना आदि से नारी का महत्व स्पष्ट होता है। आदिवासी समाज अपनी संस्कृति की रक्षा कर रहा है। जनभाषा, बोली का प्रयोग, कथा, गीतों में हुआ है। अंचल के अनुसार उत्सव – पर्व रहे हैं। पुनर्जन्म पर विश्वास होने का प्रमाण मृतक संस्कार है। जंगल पुत्र, वनवासी, जंगल के दावेदार आदिवासी भारत का सपूत है। सामान्यतः प्राचीन काल से आज तक अंधविश्वास, देवी – देवता, बलिप्रथा, व्यवसाय, घोटुल, जातपंचायत का प्रभाव है। जंगल, वन पर निर्भर आदिवासी समाज के व्यवसाय परंपरागत है। लोकगीत, लोककथा, उत्सव – पर्व, रूढ़ि – परंपरा, संस्कार में भी धीरे – धीरे परिवर्तन हो रहा है। रूढ़ि – परंपरा से शोषित आदिवासी समाज है। विवाह, मृतक संस्कारों में बलिप्रथा, नशापन, सामूहिकता आज भी रही है। गुदना आदिवासी नारी एवं पुरूषों की विशेषता है।

आदिवासी अविकसित होकर भी अपनी संस्कृति की रक्षा करते हैं। भारतीय संस्कृति मूल स्त्रोत आदिवासी संस्कृति में दिखाई देता है। अपने धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा रखनेवाला आदिम स्वसंस्कृति से अत्यधिक प्रेम करता है।

जंगल के दावेदार, वनों के जानकार, प्रकृति की संतान, मूलनिवासी आदिवासी की जनसंस्कृति भारतीय संस्कृति की आत्मा है। आदिवासी जनसंस्कृति की रक्षा करना, सामाजिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। आदिवासी जनसंस्कृति की रक्षा करना भारतीयों का कर्म है।

—: संदर्भ सूची :—

1. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ.16
2. वही, पृ. 19
3. पार – वीरेंद्र जैन, पृ.54
4. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 42
5. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ.13
6. वही, पृ.111
7. पार – वीरेंद्र जैन, पृ.64
8. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ.165
9. वही, पृ.166
10. वही, पृ.30
11. वही, पृ.15
12. एक लडकी की डायरी – शानी, पृ. 24 – 25
13. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ.24
14. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 9
15. हिंदी उपन्यास साहित्य का इतिहास – डॉ.प्रताप नारायण टंडन, पृ.471

चतुर्थ अध्याय

आर्थिक संदर्भ में आदिवासी जनजीवन

प्रस्तावना –

मनुष्य जीवन में आर्थिक क्रियाओं का स्थान महत्वपूर्ण है। गाँव के लोगों का प्रमुख आर्थिक आधार कृषि है लेकिन पहाड़ो और वनों में भटकने वाले आदिवासी शिकार करके या जड़ी बूटियाँ बेचकर अपना जीवनयापन करते हैं। जनजातियों के अर्थ उत्पादन के साधन लकड़ी ढोना, जड़ी – बूटी, फल – फूल एकत्रित करना, शिकार करना एवं खेती करना आदि है। पिछड़ी जनजातियाँ परंपरागत एवं अस्थाई कृषि में विश्वास करती है। अज्ञान के कारण पिछड़ी जनजातियाँ परंपरा से चली आई स्थानांतरित खेती पर ही विश्वास करते हैं। आर्थिक विषमता, गरीबी, बीमारी, बेकारी, आदि के कारण पिछड़ी जनजातियों की दशा आनंददायक नहीं है।

आदिवासियों का आर्थिक जीवन उनकी भौगोलिक परिस्थितियों से निर्धारित होता है। ये लोग अपना जीवन किसी निर्जर जगह या किसी के खेत में डेरा डाले बिता लेते हैं। शराब बनाकर बेचना, चोरी करना, जादूगरी एवं नाच – गान इनके आर्थिक उपर्जन के माध्यम होते हैं।

4.1 गरीबी –

'गोंड' आदिवासियों का आर्थिक व्यवहार आधार बहुत कमजोर होता है। इन लोगों की अर्थ – व्यवस्था वनों और दोहन रीति – नीति से बहुत गहराई से जुड़ी हुई है। गोंडो की आर्थिक स्थिति पर पी.आर. कथन दृष्टव्य है – ''सामान्यता गोंड अपने खेतों में दो फसले बोता है। धान, कोदों, कुटकी, तिलहन, चावल, मक्का, तिल्ली आदि की फसल बोयी जाती है। रब्बी में गेहूँ, चना, अलसी आदि की फसल भी बोता है। दो – दो फसल लेने के बाद भी एक गोंड परिवार का वर्ष भर का गुजारा ठीक ढंग से नहीं होता।''[1] गोंड स्त्रियाँ भी रोजगारी के लिए वन – वन भटकती फिरती रहती है। तेंदू पत्ता, माहुल पत्ता, जलाऊ लकडी बीनना तथा बेचना इनका प्रमुख कार्य है।

'जंगल के फूल' उपन्यास में गढ़बंगाल का सरदार सुलकसाए नजदीकी गाँव नेतानार में अपने मित्र झालर सिंह के साथ विवाह में शरीक होने जाता है। विवाह के नृत्य एकदान में शराब के नशे में वहाँ के दूल्हे को पीट देता है। उसने दुल्हन को अपनी वीरता दिखाने एवं उसके हृदय पर नियंत्रण करने के लिए पीटा है। राजेंद्र अवस्थी के शब्दों में – ''आज रात पंचायत इसी जवान शेर सुलकसाए के बारे में चर्चा करने इकठ्ठी हुई थी। कुछ गाँव वालों को चुनौती दी है। हम उसके गाँव में जाकर निबटेंगे। कुछ कहते थे वह भुसरी पर हाथ साफ करना चाहता है।''[2] 'जंगल के फूल' उपन्यास में एक सरकारी अधिकारी के गोंडो का ग्राम खाली देखने पर उसका नौकर उत्तर देता हुआ कहता है –'' यहाँ होता है, हुजूर। सारी रियासत के बहुत से गाँव दिन में खाली पड़े रहते हैं। यहाँ के मर्द और औरते जंगल चले जाते हैं। पेट के लिए चारा तलाशते हैं, हुजूर। यहाँ खाने का ठिकाना कहाँ है? थोड़ासा मक्का पैदा होता है। कुछ कुदाई और कुटकी। पर इनसे चार – छः मास से ज्यादा पेट नहीं चल सकता। इसलिए हम सब जंगल जाते हैं। विमल शंकर नागर का कथन दृष्टव्य है – ''गोंड जन – जाति में प्रचलित लोकोक्ति भी इनके आर्थिक स्तर की परिचायक है –

''जयत के गुनहरी, बाढ़त के भौंड
पक गये तो किसान, नांतर गोंड के गोंड।''[3]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में कबूतरा आदि की स्त्रियाँ शराब बनाने में दक्ष होती है। वे महुए के फूल और गुड़ को भिगोकर शराब बनाती है। उनके हाथों की बनाई शराब अत्यंत नशीली होती है। शराब बनाकर बेचना कबूतरा जाति का पैतृक व्यवसाय होता है, जिसे सुरक्षित रखना पुत्र का कर्तव्य बनता है। कभी अपने पैतृक व्यवसाय को नकारने पर पुत्र को पंचायत के माध्यम से अपनी बिरादरी से बहिष्कृत किया जाता है। ''उसका दारू बेचना, चोरी करना, बार – बार जेल जाना.....हमारी बिरादरी का कारोबार यही है, इसमें बुरा क्या है? पर तुम्हारी एक शाख दगीली होती चली जाएगी, क्योंकि इसके बच्चे भी आगे यही करनेवाले हैं। ऐसे फूल – फलों को लोग छूने से पहले ही फेंक देते हैं।''[4] शराब बनाने के अलावा वे लोग चोरी करने में भी सिद्धहस्त होते हैं।

कम उम्र से ही ये लोग चोरी करके अपना पराक्रम दिखाने लगते हैं। कदमबाई का पति जंगलिया बीस साल की अवस्था में भी चोरी करने में पारंगत था। इसके संबंध में मैत्रेयी पुष्पा लिखती है –''बीस साल की अवस्था में रबी के खलिहान उठते ही उसने ससुर का कर्ज उतार ने की ठानी। आधी रात के समय सड़क पर जाती बैलगाड़ी का गेहूँ चुरा लिए।''[5]

'पार' उपन्यास में जीरोन खेरे के राउत आदिवासी अपनी जीविका के साधनों में परंपरागत व्यवसाय अपनाते हैं। वनों का उजड़ता आदिवासी समाज और उनकी आर्थिक आय पर आपत्ति है। उपन्यास का मुखिया होनेवाले मुखिया गुनिया से कहता है – ''हमें गाँव वालों से किसी चीज – वसत का सहारा था क्या? तब तो हम अपनी गुजर – बसर इसी डाँग से कर लेते थे। अब दिनों दिन गाँव वालों के आसरे होते जा रहे हैं। काहे? काहे कि अब डांग में वह बरकत नहीं रही। तू भी तो जाता है डांग में। बता तू ही कि कितना भटकने के बाद जलावन मिलता है? गाद मिलती है? शहद मिलता है? जड़ी – बुटियाँ तो जाने कहाँ समाती जा रही है। हम भले ही हरा – भरा रूख नहीं काटते। वह देवता है हमारी निगाह में हमारा पालनहार। पर फिर भी हरे भरे रूख बच पाए? हम उनका कटना रोक पाए? रोक पाएँगे कभी? ..... अब ये शहर वाले नदी पर बाँध बना रहे हैं। तब प्रलय आएगी। जो अब तक बचा है, वह सब भी स्वाहा हो जाएगा। तब हम कहाँ जीएँगे? कैसे जिएँगे?''[6] राउत खेरे की औरत गाँव में अपने सामान बेचने जाती है। बदले में नून – तेल, कत्था – लता पाती है।

वन विभाग की ओर से जंगलों की कटाई में राउतों को अस्थाई रोजगार प्राप्त हो जाता है। सूखे और अकाल के दौरान राहत कार्यों में भी इन्हें कुछ समय के लिए रोजगार प्राप्त हो जाता है। शहद इकट्ठा कर कुछ आमदनी प्राप्त करते हैं। कुल मिलाकर राउतों की स्थिति बहुत कमजोर है। गरीबी और आर्थिक तंगी के कारण ये लोग साहूकार के कर्जदार है। कभी तो चोरी से कोयला प्राप्त करके बाजार में बेच आते हैं। कुछ स्त्रियाँ अपने शरीर को बेचकर अपने को पालती है तो कुछ लोग शिकार करके, मछली पकड़ कर अपने जीवन की जरूरी चीज वस्तुओं को प्राप्त करते हैं। 80 प्रतिशत से अधिक

प्राकृतिक वन, खनिज आदिवासी क्षेत्र में है। आसपास के जंगल और जमीन, पहाड़, पानी आदि से जो कुछ मिलता है इस पर वे लोग निर्भर रहते हैं।

संजीव लिखित 'धार' उपन्यास की नायिका मैना अपना जीवनयापन करने हेतु धान रोपना, कोयला जमीन से निकालना, बर्तन और कपड़े धोना आदि काम करती है। कुछ आदिवासी लोग भेड़ बकरियाँ पालकर और उन्हें बाजार में बेचकर जीवन जीते हैं। मंगर को बाँसगड़ा का परिचय देते हुए शर्मा बाबू कहता है – ''साइकिलों पर बोरे में बांधकर भेडें और बकरे.....या घर के मुर्गे – मुर्गियों को बाजार में बेचने ले जाते हुए उसे अक्सर आदिवासी दिख जाते हैं। शर्मा बताते हैं – अभी धान की रोपनी का वक्त है कुछ अपने खेत, कुछ मजूरी थोड़ी चहल पहल नजर आ रही है। अभी ज्यादातर अवैद्य कोयला खनन भी गड्ढ़ो में पानी भर जाने से बंद है। कटनी के बाद नवम्बर – दिसंबर से चित्र बिलकुल अलग हो जाता है। दिन में बूढ़ो – बच्चो या कुछ औरतों को छोड़कर जो भी जवान स्त्री – पुरूष मिलेगा, ऊँधा या सोया हुआ – रात भर अवैध कोयला खनन में काम करने बाद दिन को सोना।''[7]

जन्म से मजदूर बनाना उन आदिवासियों की तकदीर में लिखा है। कभी तो चोरी से कोयला प्राप्त करके बाजार में बेच आते हैं। कुछ आदिवासी स्त्रियाँ अपने शरीर को बेचकर अपने परिवार को पालती है, तो कुछ लोग शिकार करके, मछली पकड़कर अपने जीवनयापन करते हैं।

शानी लिखित 'साँप की सीढ़ी' उपन्यास में बस्तर जिले के कस्तूरी गाँव और सोनपूर के आदिवासी जीवन का सजीव चित्रण किया है। औद्योगीकरण के कारण मजदूरों के जनजीवन में परिवर्तन होने लगता है। अधिक मजदूरी के लोभवश गाँव के लोग खदान में काम करने के लिए जाने लगते हैं। अनियंत्रित धन के प्रवाह में मानवीय मूल्य क्षीण होने लगे हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय पूँजीपातियों ने शासक वर्ग से संबंध स्थापित कर लिया, परिणामतः सरकारी नीतियाँ पूँजीपातियों के पक्ष में बनाई गई। जमींदारी उन्मूलन, कूटनीति, धार्मिक रूढ़ियाँ, खोखली नैतिकता एवं टूटते – बदलते जीवन मूल्यों के परिपार्श्व में मजदूरी की आर्थिक दशा का सही चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में है। 1948 – 49 के समय बस्तर में सूत की गठनों के लिए

अकाल पड़ा था। कई लोग अत्याधिक धन के लालच में ऊँचे मूल्यों पर गठान बेच रहे थे और कुछ ऐसे भी लोग थे जिन्हें एक पेटी भी नसीब नहीं हुई थीं। प्रत्येक व्यक्ति इस सूत के धन्धे के माध्यम से ज्यादा से ज्यादा धन एकत्रित करने के लिए तत्पर था। ''लोगों को एक – एक बाजार में डेढ़ – डेढ़ और दो – दो हजार कमाते देखा था सात सौ की गांठ पच्चीस – पच्चीस सौ में बिकी थी और सही मायने में रूपये दोनों हाथों से समेटे गये थे।''[8] इससे स्पष्ट होता है कि कस्तूरी गाँव की आर्थिक स्थिति का वास्तविक रूप प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से गाँव में रीति – रिवाज, विवाह, संस्कार, ग्रामीण स्त्री – पुरूषों में फैले अंध – विश्वासों सामाजिक रूढ़ियों, अत्याचारों आदि का वर्णन यथार्थ धरातल पर हुआ है।

आदिवासी 'नट' समाज की आर्थिक स्थिति न के बराबर होती है। वे लोग अपना जीवन निर्वाह करने के लिए शिकार, चोरी, शब्द इकट्ठा करने, बेचने, दवाई गोली बनाकर बेचने आदि काम करते हैं।

4.2 भुख से पीड़ित –

आर्थिक शोषण के कारण पिछड़ी जनजातियों को भुख से पीड़ित होते देखा जाता है। 'शैलूष' उपन्यास में नट जाति के लोग भुख मिटाने के लिए गिलही, चूहे, उदबिलाव, मेंढ़क आदि खाकर दिन गजारते हैं तो कोई निर्जला एकादशी का व्रत करता है। ''कबीले के सरदार जुठ़ावन के घर में बाजरे की आधी टुक्की भी नहीं मिलती। मकुल रोटी के लिए रोते – रोते सो जाता है। आज तीन दिन से बेला ने कुछ नहीं खाया, पिया। जुड़ावन रोज निर्जला एकादशी का व्रत कर रहा है।''[9] जाड़े के दिनों में इस परिवेश में रोजी रोटी मिलना भी मुश्किल हो जाता है। ''जाड़ो के दिनों में तो इस परिवेश में रोजी – रोटी की तलाश में धूप तापने माल – भाभर की तरफ जाना पड़ता है।''[10] बेकारी के कारण लोग गाँव छोड़कर काम की तलाश में भटकते हैं।

4.3 जल की असुविधा :–

आदिवासी जनजातियाँ पीने के पानी के लिए आज भी कुएँ या अशुद्ध जल, तालाब के पानी पर ही निर्भर है। 'धार' उपन्यास संथाल अपने करीब हो रहे विकास को देखकर आदिवासी मैना क्रोध व्यक्त करती है –''आज

ई ठो सोचने की बात है कि हम ऐसे ई रहेगा। पानी का पाइप हमारी छाती पर से गुजरता हमको एक बूँद पानी नई, रेललाइन बगल में है, मगर हमारे खातिर सौ कोस दूर, वोट देने को हमको आज तक कोई बोला नई, हमारा चिट्ठी – पत्री निहालसिंह के दुकान के पते पर आता। हमारा कोई पता ठिकाना नई।''[11] 'शैलूष' उपन्यास में पानी के अभाव में नटों की संघर्षमय समस्याओं के कारण थानेदार परताप से जुग्गीलाल कहता है –''हुजूर, ये नट गंदे तालाब का पानी कब तक पीते रहेंगे? हुजूर मैं ठाकुरान का जुग्गी हूँ। हमारे गाँव के किसी कुएँ में मीठा पानी नहीं है, गाँववालों को पीने का पानी देने का एलान सच है या झूठ।''[12] विकल्प, अग्निबीज, महर ठाकुरों का गाँव आदि उपन्यासों में पानी की असुविधाओं का चित्रण हुआ है।

4.4 आर्थिक शोषण –

आदिवासियों का जमींदारी एवं पूँजीपतियों द्वारा होता उनका आर्थिक शोषण संजीव कृत 'धार' उपन्यास में कोयला अंचल के संथाल आदिवासियों का जीवन पूँजीपाति महेंदर बाबू द्वारा शोषित है। कड़ी मेहनत के बाद उन्हें अभावग्रस्त और फटेहाल जीवन जीना पड़ता है। कोयला खदानों में दिन – रात खटने के बाद भी ठेकेदार उन पर जुल्म ढहाते हैं। ''ठेकेदार अब भी ढोर डांगरों की तरह उन्हें काम कराने हाककर ले जाते हैं और चूस कर छोड़ देते हैं, माफिया अब भी उनसे अमानुषिक श्रम कराते हैं। और जरा – जरा सी बात पर पीटते हैं।''[13] कहना सही है कि उन्हें चोरी से कोयला काटना पड़ता है।

पंकज विष्ट कृत 'उस चिड़िया का नाम' उपन्यास पहाड़ी जीवन का चित्रण है। बंजर जमीन, रोजगार के अवसरों का अभाव, औद्योगीकरण की कमी ऐसी अनेक समस्याओं से घिरा है। बेकारी से त्रस्त लोग रोजी – रोटी का प्रबंध भी नहीं कर सकते। खिमानंद हरीश से कहते हैं – ''पहाड़ों से आदमियों की किसी के पीछे सिर्फ कपड़े नहीं है। दूसरी ओर शिक्षित युवक भी विवश होकर नौकरी के लिए महानगरों की ओर भाग रहे हैं। .....रोजगार के अवसरों का न होना सबसे बड़ा कारण है।''[14]

हिमांशु जोशी कृत 'सु – राज' उपन्यास में बदलते प्राकृतिक परिवेश

के कारण बढ़ रही बेकारी का शिकार हुआ कुमाऊँ का पर्वतीय अंचल और आदिवासी जनजीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है।

4.5 अस्पताल की सुविधाओं से वंचित :–

आदिवासी इलाखों में यातायात, अस्पताल, पीने का पानी, पाठशाला, वैज्ञानिक साधन जैसी अनेक प्राथमिक आवश्यकताओं का अभाव है। अस्पताल की सुविधा न होने के कारण अनेक जनजातियाँ जादू – टोने में विश्वास करती है। 'सोनामाटी' उपन्यास में गाँव के लोग अस्पताल की सुविधा न होने के कारण कभी – कभार अंग्रेजों को याद करते हैं। रामस्वरूप कहता है –''यह अंग्रेजी मिशन की लेड़ी डाक्टर नहीं होती तो? फिर वह सोचता है, अंग्रेजों के जाने के बाद अपने मुल्क की 'डागडरनी' गाँव – गाँव में नहीं पहुँची और पराये मुल्कवाली का ही आसरा अंततः शेष रहा।''[15]

'सु – राज', 'सात घरों का गाँव', 'शेष कथा', 'जंगल के आसपास' आदि उपन्यासों में इसका चित्रण हुआ है।

4.6 पूँजीपति और श्रमिकों का संघर्ष :–

संजीव कृत 'धार' उपन्यास में पूँजीपति और श्रमिकों के संघर्ष का चित्रण किया है। संघर्ष संचालन के केंद्र में शर्मा बाबू और मैना है। शर्मा बाबू का संघर्ष विचारात्मक है, तो मैना का संघर्ष क्रियात्मक है। मैना अपने अपने आदिवासी समाज को भयानक भेड़िया रूप महेंद्र बाबू की कुटिलता और शोषण से सजग करती है। वह भूसा के ढेर में वो आग का तिनका रखती है जिसके परिणामस्वरूप आदिवासियों के अधिकार बोध की आग गगन को छूती है। महेंद्र बाबू की तेजाब की फैक्टरी का विरोध इसका प्रमाण है। ''सीधे समाट आदिवासी जिस बात पर अड़ गए उन्हें वहाँ से कोई टस – से – मस नहीं कर सकता। अब वे इस बात पर जिद पकड़ चुके थे कि इस जहर की फैक्टरी को अपने इलाके में ओर नहीं चलने देंगे न खुद इसमें काम करेंगे न औरों को ही काम करने देंगे।''[16] जन खदान का निर्माण और प्रगति पूँजीपति महेंद्र बाबू के लिए चुनौती बनती है। महेंद्र बाबू व्यवस्था को कुछ रूपये देकर पुलिस और अन्य अधिकारियों की सहायता से इस संगठन को तोड़ने का प्रयास करते हैं। लेकिन शर्मा और मैना ठानकर बैठते हैं, वे हार मानते शर्मा आदिवासियों की मोर्चा बंदी

करते हुए आक्रमक होने की सलाह देते हैं – ''तो साथियों यह धार ही हमारी शक्ति है और धार का भोयरा होना ही मौत है। यहाँ ही नहीं जहाँ – जहाँ भी साम्यवादी सरकारें हैं, यह उपमा लागू होती है.....चारों तरफ भेड़िये गुर्रा रहे हैं। वे हमें खा जाने पर आमादा है। लेकिन क्या हम उनके नापाक इरादे पूरे होन देंगे। नहीं। हरगिज नहीं। इसलिए हमें धार की जरूरत है, सतत सान से ताजा होती धार। चाहे हमें कोई भी कुर्बानी क्यों न देनी पड़े।''[17] आदिवासी जन – खदान की रक्षा हेतु पुलिस, अधिकारी, पूँजीपति तथा व्यवस्था से संघर्ष करते हैं। लेकिन सदोष व्यवस्था, पूँजीपातियों की कुटिलता और भ्रष्ट अधिकारियों के कारण निर्माण कार्य और चेतना को कुचल दिया जाता है। अनेक आदिवासी तथा मैना बुलड़ोजर के नीचे शहीद हो जाते हैं। लेकिन मैना की मृत्यु चेतना और संघर्ष की समाप्ति नहीं है।

4.7 कृषि व्यवसाय :–

पहाड़ी अंचलों एवं आदिवासियों में कृषि व्यवसाय की दशा अत्यंत शोचनीय है। 'महर ठाकुरों का गाँव' उपन्यास में किसानों की दशा दयनीय है। ''महुआ, मदिरा, भाट और कौणी जैसे कुछ मोटे अवाज होते हैं और बहुधा खेत से घर लाकर कूठने, साफ करने तक खा लिए जाते हैं।''[18] कुछ पिछड़ी जनजातियाँ परंपरागत एवं अस्थाई कृषि में विश्वास करती है। ''स्थानांतरित कृषि, भूमि के एक ही भाग पर अधिक लंबे समय तक नही जाकर समय – समय पर इसे बदलते रहकर नए भूखंडो पर ही जाता है।''[19]

'वनतरी' उपन्यास में पहरिया जाति के लोग हर वर्ष अपनी कृषि का स्थान परिवर्तन करते हैं। दुर्भाग्यवश उस स्थान में सूखा पड़ जाता है तब निराश होकर कहते हैं – ''धान की लहलहाती फासलें सूख गई। किसान अपनी छाती पर पत्थर रखकर सारा दुःख झेल गए। बड़ी आशा थी कि रबी की फसल होगी, तो खरीफ का घाटा दूर हो जाएगा। मगर यह फसल भी धोखा दे गई। पिछड़ी जनजातियाँ परंपरा से चली आई स्थानांतरित खेती पर ही विश्वास करते हैं। 'निलोफर' उपन्यास में बैगा जनजाति परंपरा से अस्थाई कृषि करती आई है। प्रस्तुत उपन्यास में अशोक से आदिवासी मंगलू कहता है –''हमारा यहाँ मन चाहता है हम धार, मक्का बोते हैं वर्ना तो भुखें मरें।''[20]

आदिवासियों के विकास की सभी योजनाओं का अत्यधिक लाभ ठाकुर ही उठाता है। ''जमींदारी टूट जाने के बाद भी पूरी तरह जमींदार बने हुए और जिनके डर से यहाँ का समूचा इलाका थरथराता हैं।''[21] कहना सही है कि जमींदारी व्यवस्था में पिछड़ी जनजातियों की आर्थिक दशा को दयनीय एवं शोचनीय बना रखा है। 'सोनामाटी' उपन्यास के करइल अंचल का जमींदार दीनद्याल कुटिल एवं आतंक से ढाई सौ रूपए के बदले में सीरी भाई नामक गरीब किसान का तीन बीघा जमीन हड़प लेता है। उसी प्रकार हनुमानप्रसाद तथा नवीन बाबू भी निम्नजाति मर आतंक बनाये हुए है। ''ये मांस नहीं जमीन खाते हैं। भूमिखोर भेड़िए।''[22]

देश की पूँजीवादी व्यवस्था ही ऐसी है कि जो कुटिलता से निम्न तथा पिछड़ी जनजातियों को ऋण के चंगुल में फंसाकर रखने में बड़ा पुरूषार्थ मानती है। साहूकारों से ऋण लेना उनके जीवन का एक हिस्सा बन गया है। ''लोगों की यह लातात थी कि वे जिस तरह से कर्ज की धरोहर को पाते हुए धरती पे पाँव थे उसी तरह अपनी अगली पीढ़ी को कर्जदार बनाने मम को जीते थे।''[23] रामदेव कृत 'विकल्प' उपन्यास में जमींदार चौबे, साहूकार गरजू सुकुल और सुभग सुकुल गरीब और भूमिहीन चमार का बड़ी बेदर्दी से शोषण करते हैं। ''इस गाँव का जीवन चलता है डोमपुरवा के बाबा लोगों की लाल बहियों के सहारे। एक – एक पंडित की लाल बही में राजापुर के दर्जनों आदमियों के नाम दर्ज है। वे नाम पीढ़ी दर पीढ़ी इन बहियों में चल जाते हैं।''[24] राकेश वत्स लिखित 'जंगल के आस पास' उपन्यास में पूँजीपति रायसाहब आदिवासियों को ऋणग्रस्त बनाकर अपने खेतों या फैक्टरियों में दिन – रात खटवा रहे थे। गाँव की अदालत एवं कानून सभी कुछ रायसाहब के हाथ में हैं।

आर्थिक विषमता की इस खाई ने किसान, मजदूर और पिछड़ी जनजातियों का जीवन अस्थिर कर दिया है। आदिवासियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि के साथ – साथ कुछ लोग पशुपालन तथा अन्य व्यवसाय भी करते हैं।

4.8 अर्थाभाव की स्थिति :–

गरीबी, अशिक्षा, अज्ञान, सामान्य वित्तिय व्यवस्था को अपनाना, वनों पर निर्भर रहना, पंच को महत्व देना, विशिष्ट भूप्रदेश को महत्व देना, विज्ञान –

तंत्रज्ञान का अभाव के प्रभाव के कारण आदिवासी अप्रगत स्थिति में ही है। आज मजदूरी करनेवाले, परंपरागत व्यवसाय करनेवाले, अप्रगत आदिवासियों में शैक्षिक तथा व्यावसायिक प्रयोजनों के कारण अब नई आर्थिक चेतना बह रही है। अब पड़ा – लिखा आदिवासी नगरों आदि जगहों जाकर नौकरी भी कर रहा है। इससे लगता है आदिवासी अपने अधिकार के लिए लड़ रहे हैं किंतु नेता तथा पूँजीपति उन्हें चुस रहे हैं। संजीव कृत 'धार' उपन्यास की मैना कहती है –''चारों तरफ भेड़िए गुर्रा रहे हैं, वे हमें खाजाने पर आयकद है। हमें धार की जरूरत है, सतत सानजो ताजा होती धार।''[25] आदिवासियों में परंपरागत व्यवसाय छोड़कर नए – नए व्यवसाय शुरू हो रहे हैं।

कबूतरा एक ऐसी आदिवासी जाती है, जिसका आर्थिक जीवन स्वयं व्यक्ति पर निर्भर रहता है। शराब बनाकर बेचना, चोरी करना, जादूगरी एवं नाच – गान इनके आर्थिक उपार्जन के माध्यम होते हैं। शराब बनाकर बेचना कबूतरा जाति का पैतृक व्यवसाय होता है। जिसे सुरक्षित रखना पुत्र का कर्तव्य बनाता है। ''उसका दारू बेचना, चोरी करना, बार – बार जेल जाना..... हमारी बिरादरी का कारोबार यही है, इसमें बुरा क्या है? .....पर तुम्हारी एक शाख दगीली होती चली जाएगी, क्योंकि इसके बच्चे भी आगे यही करनेवाले हैं।''[26]

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त विवेचन विश्लेषण के पश्चात हम यह कह सकते हैं कि अर्थाभाव, अज्ञान, यातायात की असुविधा, पीने की पानी की समस्या, प्राकृतिक विपदाएँ, शोषण आदि के कारण आदिवासी जीवन में गरीबी, बीमारी, भूख, ऋणग्रस्तता अधिक प्रमाण में दिखाई देती है। पहाड़ी एवं आदिवासी जनजातियों की दशा भयावह एवं चिंताजनक है। अर्थाभाव का विकराल रूप आदिवासी जनजीवन को निरंतर बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है। आर्थिक विषमता एवं शोषण के कारण पिछड़ी जनजातियों को भूख से आहत होते देखा जाता है। गरीबी, अर्थाभाव, शोषण आदि के कारण आदिवासी जनजीवन भूख से त्रस्त पाया जाता है। आदिवासी जनजातियों में बंजर कृषि, प्राकृतिक विपदा और अखंड गरीबी का भयावह रूप दिखाई देता है।

भौतिक सुविधा, विकास योजना, नए तंत्रज्ञान आदि का अभाव के

कारण उनकी आर्थिक स्थिति शोचनीय है। अप्रगत, परंपरागत व्यवसाय करने से आर्थिक स्थर निम्न रहा है। आज बिहार में कोयला खदान व्यवसाय होने से आदिवासी लाभान्वित नहीं बल्कि ठेकेदार धनवान बने। आदिवासी समाज जंगलों, वनों, पहाड़ियों की गोद में रहनेवाला समाज है। जंगल, पहाड़ उनकी संपत्ति, जड़ी – बूटी, रोजी – रोटी का आधार वही देवता है। पहाड़ की खुदाई करना, कोयला खदान से पहाड़ नष्ट हो रहे हैं, हरे जंगल उजड़ रहे हैं। पहाड़ की गोद में छिपी खदान, लोह – मैगनाईट, ताँबा की प्राप्ति के लिए खुदाई शुरू है। पूँजीवादी, कारखानदार पहाड़ों में बस रहे हैं। आदिवासी को मजदूरी मिली मगर वह भी शोषण का आयाम बनी है।

–: संदर्भ सूची :–

1. भारत के आदिवासी – पी.आ.नायडू, पृ.27
2. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ. 52
3. सूरज किरण की छाँव – राजेंद्र अवस्थी, पृ.30
4. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 34
5. वही, पृ.14
6. पार – वीरेंद्र जैन, पृ.15
7. धार – संजीव, पृ.37
8. साँप और सीड़ी – शानी, पृ.104
9. शैलूष – शिवप्रसाद सिंह, पृ.71
10. सुराज – हिमांशु जोशी, पृ.20
11. धार – संजीव, पृ.56 – 57
12. शैलूष – शिवप्रसाद सिंह, पृ.233
13. धार – संजीव, पृ.134 – 135
14. उस चिड़िया का नाम – पंकज विष्ट, पृ. 170
15. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ.351
16. धार – संजीव, पृ.57
17. वही, पृ.165
18. महर ठाकुरों का गाँव – बटरोही, पृ.9
19. भारत की जनजातीय संस्कृति – डॉ.विजयशंकर उपाध्याय
20. नीलोफर – कृष्णा अग्निहोत्री, पृ.72
21. समर शेष है – विवेकीराय, पृ.138 – 139
22. वनतरी – सुरेश श्रीवास्तव, पृ.11
23. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ.10
24. नदी फिर बह चली – हीमांशु श्रीवास्तव, पृ.365
25. संजीव – धार, पृ.165
26. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.37

पंचम अध्याय

राजनीतिक संदर्भ में आदिवासी जनजीवन

प्रस्तावना –

गाँव – गाँव में, गाँव की गली – गली में राजनीति अपनी पहचान बनाये हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित गाँव एवं अंचल भी इससे अछूत नहीं। पंचायत, को – आपरेटिव, राजनीतिक दलबंदी और चुनाव के कारण नित्य नए तनाव अलग करके भारत की कल्पना दी नहीं की जा सकती। प्रशासन से जुड़ा नेतृत्व वर्ग अपने स्वार्थ में अंधा होने लगा है। जनता गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी में जीवन बिता रही है। स्वतंत्रता की लड़ाई लड़नेवाले और ईमानदार लोग सत्ता के गलियारे से धीरे – धीरे दूर होने लगे। शानी की दृष्टि भारतीय राजनीति से अछूती नहीं रही। महात्मा गांधी के स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव 'कालाजल' उपन्यास में दिखाई देता है। भारतीय पराधीनता के दुःख को 'काला जल' और 'साँप और सीढ़ी' उपन्यास में चित्रण हुआ है। 15 अगस्त, 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। इस दौरान देश विभाजन की समस्या मुँह फाडे खड़ी हुई। जगह – जगह सांप्रदायिक दंगे हुए। दंगों के कारण लोग एक – दूसरे देश से भागना चाहते थे। विभाजन के दौरान शरणार्थी समस्या उत्पन्न हुई। इसका चित्रण 'बाहरी आदमी', 'काला जल' और 'साँप और सीढ़ी', 'नदी और सीपियाँ' आदि रचनाओं में देखा जा सकता है।

5.1 वर्तमान राजनीति –

आज का भारतीय समाज खास करके आदिवासी समाज राजनीति के चक्रव्यूह में फँस गया है। बेकारी, बेरोजगारी, सांप्रदायिकता, पिछड़ी जाति की भावना, शोषक – शोषित का भेद आदि ने उसकी पीड़ा को और बढ़ा दिया है। राजेंद्र अवस्थी कृत 'जंगल के फूल' उपन्यास में राजनीतिक परिस्थिति का चित्रण हुआ है। बस्तर पहले एक देशी रियासत थी। आजादी के बाद देश की अन्य रियासतों के साथ – साथ रियासत को भी भारतीय गणराज्य में विलय कर दिया गया। ग्यारहवीं सदी में मुसलमानों के आक्रमण से त्रस्त होकर एक

नागवंशी राज – परिवार भागकर यहाँ आया था और बारसूर में उसने अपनी राजधानी स्थापित की थी। दिल्ली के शासक राजा वीरभद्र की संतान है। वीरभद्र बड़े प्रतापी और देशभक्त राजा थे।

बस्तर के आदिवासीयों में खलबली मचने का कारण कर्नल फेगन तथा ग्रेयर रहे। इन अधिकारियों ने जंगल काटना रोकने, जंगल कर लगाने, शिक्षा के लिए पाठशालाएँ बनाना आदि के लिए नए कानून पास किए। ये अधिकारी कानून बना ही पाथे थे कि यहाँ से चले गए और पंडा बैजनाथ के सिर पर पड़ा। ये अधिकारी कानून बना ही पाथे थे कि यहाँ से चले गए और पंडा बैजनाथ को दीवान नियुक्त किया। अवस्थी लिखते हैं – ''यह सन् 1904 की बात है पंडा बैजनाथ पुराने ई.ए.सी.थे। उनके समय में सरकारी अफसर भी मनमानी करने लगे थे और इन सबका परिणाम था, राजव्यापी'भूमकाल' या विद्रोह।''[1] बस्तर के इतिहास में यही 'भूमकाल' अपना विशेष महत्व रखता है। बेचारे पंडा बैजनाथ का इसमें हाथ न होते हुए भी यहाँ के पिछड़े आदिवासी आज भी उन्हें को दोष मानते हैं।

वर्तमान परिवेश में राजनीतिक जीवन अत्यंत भयावह, विकृत और चिंता का विषय बन गया है। यह समस्या राष्ट्रीय स्तर से लेकर पंचायत तक समान रूप में पायी जाती है। आज सामाजिकता, सामूहिकता, नैतिकता विघटित हो रही है। पंचायत व्यवस्था पर उच्चवर्ग और जमींदारों का ही अधिकार है। पिछड़ी जनजातियों को दिया गया आरक्षण सिर्फ कागज पर ही है। रामदेव शुक्ल लिखित 'विकल्प' उपन्यास में पंचायत जमींदार चौबे कुटिलता से प्राप्त किए अधिकार का पर्दाफाश करता है। गाँव की पंचायत आरक्षित है तो वहाँ तिकड़मबाजी से काम लिया जाता है। आरक्षण अगर स्त्री के लिए हैं तो नाममात्र उस स्त्री को हस्ताक्षर का अधिकार होता है। वर्तमान स्थिति में अधिकांश ग्रामीण समाज में पंचायत का भ्रष्ट रूप ही देखने को मिलता है।

वर्तमान चुनाव में धन, शक्ति, भ्रष्टाचार, हत्या, गुंडागर्दी, अपहरण आदि का सहारा लिया जा रहा है। आदिवासी समाज जीवन इसका बुरी तरह शिकार हुआ दिखाई देता है। सुरेशचंद्र श्रीवास्तव लिखित 'वनतरी' उपन्यास में शोषण और व्यवस्थागत विसंगतियों का चित्रण अत्यंत व्यापक से हुआ है। स्वार्थ

के लिए जब पुलिस बेगुनाह बुद्धू पर अमानुष अत्याचार करती है। जिसमें उसकी मृत्यु हो जाती है। ''पुलिस एक दिन उसे जंगल से लूट – पाट करने के आरोप में गिरफ्तार कर ले गई, तो पुलिस की मार से हवालात में ही मर गया।''[2] कहना सही है कि ठाकुर और पुलिस की मिलीभगत से ही आदिवासियों पर बेबुनियाद इल्जाम लगाकर पुलिसों के अत्याचार बढ़ रहे हैं। मणि मधुकर 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास लुहार जनजाति पर किए गए पुलिस के अमानुष अत्याचार का यथार्थ अंकन करता है। शस्त्र, औजार आदि बनाकर उसे बेचकर अपना जीवनयापन करनेवाली गाडिया लुहार जाति को पुलिसवाले अक्सर तंग करते हैं। एक दिन बुज्जी के पति को पुलिस गिरफ्तार करती है, उस पर इल्जाम है कि उसने डाकुओं को शस्त्र बेचे हैं। इसमें बुज्जी को भी पुलिस अपमानित करती है। पति के रिहाई के लिए दो सौ रूपये की रिश्वत पुलिस माँगते हैं। समय पर रिश्वत न पहुँचने के परिणामस्वरूप बुज्जी का पति पुलिस के अमानुष अत्याचार का शिकार हो जाता है।

वर्तमान परिवेश में भारत की पुलिस भ्रष्टाचार आदि में बुरी तरह फँसी हुई दिखाई देती है। वर्तमान समय में बड़े – बड़े अपराधियों को नेता लोग उन्हें सहकार्य करते हैं। राकेश वत्स लिखित 'जंगल के आसपास' उपन्यास में पुलिस तथा जमींदारों की मिलीभगत से आदिवासियों पर होनेवाले अन्याय से पुलिस की भ्रष्टता का चित्र स्पष्ट होता है। दमकड़ी अंचल के आदिवासी जातियों को नेता रायसाहब नक्सलवादी घोषित करते हैं। नेता, व्यवस्था और पुलिस के अत्याचार में पूरा दमकड़ी अंचल पिसता हुआ दिखाई देता है। 'भारत बनाम इंडिया' उपन्यास में नेता चुनाव जीतने के लिए गरीबों को रूपये बाँटते हैं। लालच देकर वोट खरीद लेते हैं। ''मैं कहता हूँ.....इस बार भी वही होगा, जो मैं कह रहा हूँ। यदि तुम्हें विश्वास नहीं हो तो डोम होली और मोची टोली में घूमकर देख आओं। वहाँ तिवारी जी के लडैत भरे हुए हैं। दोनों टोलियों में औरतों को रूपये और कपड़े बाँट जा रहे हैं। मरदों के लिए दारू और मांस की दुकाने फ्री कर दी गई है।''[3]

'शैलूष' उपन्यास में गाँव के पिछड़ी जनजातियों के भूमिहीन नयें तथा

चमारों को सरकार जमीन देती है, तब सब्बों से रूपा कहती है –''मैं सोच रही थी चाची कि सरकार नेता तो हमें भूमिहीन मानकर जमींने दे दी। पंद्रह वर्ष से अधिक समय तक आबाद आदिवासियों को मर्द पीछे एक – एक एकड़ मिला यानी बसावन जैसे मूरख भी जमीनवाले हो गए.....?''[4] आदिवासी जनजीवन की राजनीति जमींदार – पूँजीपातियों के हाथ का खिलौना है। आदिवासी के बच्चों को सरकार शिक्षा के लिए खर्च भी देती है। इसके बारे में मौसी अमृत के पिता कैलास को जानकारी देते हुए कहती है –''और सुनों कैलास, आदिवासी लड़के – लडकियों की पढ़ाई का सारा खर्चा सरकार देती है यानी तुम अमृत के बारे में सोचना छोड़ दो।''[5]

एक तरफ अशिक्षित, अज्ञानी, दीन – हीन राउत आदिवासियों का अमीरों ने शोषण किया है। 'पार' उपन्यास में गरीब आदिवासियों की भरमारकर नसबंदी करवाकर निर्मल साव सरकार की ओर से कुछ मुनाफा प्राप्त करता है। वीरेंद्र जी लिखते हैं –''इस काम से अंजाम देने के बाद धूरे साव कभी किसी खेरे में नहीं गया। वे मरते हैं या जीते हैं, साव को खबर नहीं। जिन राउतों को पलकों पर बैठा कर चंदेरी लाया था, अब उन्हें पड़ा भी नहीं देखना चाहता धूरे सावा अब तो सात गाँवों के परमिट का किरोसिन, शक्कर चंदेरी में ही हासिल करके, चंदेरी में ही ठिकाने लगाकर मौज मनात है धूरे साव।''[6]

वर्तमान परिवेश में स्वतंत्रता के पश्चात् अधिकांश गाँवों में पंचायत की स्थापना हुई है। पंचायत में गाँव के उच्च वर्ग का ही दबाव होता है। ''गाँव के भूमिधर व संपन्न लोगों के हाथ में पूरी सत्ता आ गई है। ग्राम पंचायतें व न्याय पंचायतें उनके हाथ की कठपुतली बन गई है।''[7] पहाड़ी, आदिवासी तथा जल तरीय लोगों में उतना राजनीतिक विकास नहीं हैं। भ्रष्ट राजनीति ने गाँव के भाईचारा, प्रेम, सामाजिकता, शांति को अलगाव, दलबंदी, ईर्ष्या, द्वेष के सहारे भंग किया है।

रोज केरकट्टा कृत 'नुझड़र डांड' नाटक के माध्यम से आदिवासी संस्कृति को हड़प रहे वर्तमान राजनीति के प्रति विद्रोह व्यक्त किया गया है। आदिवासी के इस वर्तमान स्वरूप को जो धन बल और छल से विकृत हो चुका है, लोकतंत्र को स्वीकार नहीं कर पा रहे है। प्रकृति की गोद में अपना राज

स्थापित करना चाहता है।

5.2 चुनाव का नया रूप –

वर्तमान समय चुनाव में धन, शक्ति, भ्रष्टाचार, हत्या, गुंडागर्दी, अपहरण आदि का सहारा लिया जा रहा है। डॉ.एन.रामन नायर कृत 'सागर की गलियाँ' उपन्यास चुनाव के दौरान होनेवाले भ्रष्टाचार का पर्दापाश करता है। स्मगलिंग की सहायता से उपन्यास का नायक चात्तू नेता बनने का भरसक प्रयास करता है। राजनीति में प्रवेश करने के लिए वह पूँजी के बल पर मुख्यमंत्री से रिश्ता जोड़ता है। चुनावी षड़यंत्र के लिए चात्तू दस हजार गुंड़ो को अवैध कार्य करने के लिए पाल रखता है। पाँच लाख मतदाताओं को खरीदा जाता है। विदेशी शराब और ललनाओं का भोग भी दिया जाता है। सरकारी अफसर भी बिल्ली बन जाते हैं। 'सोनामाटी' उपन्यास के करइल अंचल में चुनाव के दौरान आतंक, भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता का चित्रण हुआ है। जमींदार का पुत्र भुवनेश्वर विधायक बनने के लिए चुनाव जीतना चाहता है। ''सोनार टोली के दो सौ से ऊपर वोट को दीनदयाल और गगजिंदर सहित हनुमानप्रसाद के गुंडों ने घरों से बाहर निकलने ही नहीं दिया और पोलिंग बूथ पर कब्जा कर सारा मत जो विरोध में जाता एक तरफ गिरवा लिया।''[8]

'विकल्प' उपन्यास में चुनाव हर बात काँग्रेस के मंत्री ही जीतते हैं। अधिकारियों से मिलीभगत कर जीत के लिए कई वोट कम होकर भी समाजवादी पार्टी को पराजित करते हैं। पार्टी के नेता निराश होकर कहतें हैं – ''पिछली बार भी मैं जीता था। उससे पहले भी मैं ही जीता था लेकिन हर बार जीतकर भी मैं हार जाता हूँ, और हर बार हार कर भी वे जीत जाते हैं।..... लेकिन जो चीज जनता के हाथ में नहीं है, सिर्फ अधिकारियों के हाथ में है, वही मुझे हर बार हरा देती है।''[9]

5.3 पुलिस के अत्याचार :–

गाँव के नेता, ओझा, महाजन और जमींदारों दफवारा आतंकित सामान्य जनता का हूबहू चित्रण राकेश वत्स कृत 'जंगल के आसपास' उपन्यास में किया है। दमकड़ी अंचल के आदिवासी जातियों को नेता रायसाहब नक्सलवादी घोषित करते हैं, पुलिस उसे पकड़ने के लिए आती है तब –''गाँव

के अधिकांश लोग घर – बार छोड़ खेतों और गारों की तरफ निकल गए थे। जो घर – बार देखने के लिए बचे रहे थे, वे कपाट बंद करके अंदर दुबक गए थे।''[10] नेता, व्यवस्था और पुलिस के अमानुष अत्याचार में पूरा दमकड़ी अंचल पिसता हुआ दिखाई देता है।

शिवप्रसाद सिंह कृत 'शैलूष' उपन्यास में पुलिस व्यवस्था के भ्रष्ट तथा न्यायपूर्ण दोनों रूपों का चित्रण हुआ है। उपन्यास का विकृत पात्र थानेदार सुरजभान सिंह कुटिल अन्यायी और भ्रष्ट है। डी.आई.जी. द्वारा होने के बाद वह कोई कारण न होते हुए भी नट युवकों को गिरफ्तार करता है। नटों की रिहाई हेतु थाना जाने वाली सावित्री को थानेदार सुरजभान से अपमानित होना पड़ता है। वह सावित्री को कालियाँ देता है, कहता है –''जुर्म करने से ही जुर्म नहीं बनता। मैं निर्दोष को इतना बड़ा जुर्म कारंदा साबित कर सकता हूँ फांसी के अलावा उसके लिए कोई और राह बचेगी ही नहीं।''[11] कहना सही है कि पुलिस व्यवस्था के कुछ अफसर अपने आप को सर्वेसर्वा समझते हैं।

मणि मधुकर कृत 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास लुहार जनजाति पर किए गये पुलिस के अमानुष अत्याचार का यथार्थ चित्रण है। शस्त्र, औजार बनाकर, उसे बेचकर अपना जीवनयापन करनेवाली गाड़िया लुहार जाति को पुलिसवाले अक्सर तंग करते हैं। एक दिन बुज्जी के पति को पुलिस गिरफ्तार करती है, उस पर इल्जाम है कि उसने डाकुओं को शस्त्र बेचे हैं। इसमें बुज्जी को भी पुलिस अपमानित करती है। पति के रिहाई के लिए दो सौ रूपये की रिश्वत पुलिस माँगते हैं। समय पर रिश्वत न पहुँचने के परिणामस्वरूप बुज्जी का पति पुलिस के अमानुष अत्याचार का शिकार हो जाता है। दीबि रम्या से कहती है –''पहले तो कैद – कोठरी में रखा। फिर किसी बात पर बिगड़ गए वो लोग। बाऊ की आँखे फोड़ डाली। उसके बाद काट – कूट के डाल दिया कहीं।''[12]

सुरेशचंद्र श्रीवास्तव लिखित 'वनतरी' उपन्यास में पुलिस द्वारा परहिया आदिवासियों पर किए गए अमानुष अत्याचार का वर्णन हुआ है। पुलिस बेगुनाह बुद्धू पर अमानुष अत्याचार करती है जिसमें उसकी मृत्यु होती है –''पुलिस एक दिन उसे जंगल में लूट – पाट करने के आरोप में गिरफ्तार कर ले गई तो वह पुलिस की मार से हवालात में ही मर गया।''[13]

संजीव लिखित 'धार' उपन्यास में भी पुलिस के आतंक, अन्याय और भ्रष्टाचार का सशक्त चित्रण हुआ है। पुलिस और अधिकारी आदिवासियों को न्याय तो नहीं देती बल्कि उनसे ही लेकर उन्हें उराती – धमकाती है। सुबराव सारे जैसे निरपराध लोग भी पुलिस की गोलियों के शिकार बनते हैं। आतंकित आदिवासी सोचते हैं –''अब बांजगड़ा में रहने का मतलब है या तो पुलिस का शिकार बनाना या माफिया का।''[14] पुलिस के साथ – साथ माफिया भी आदिवासियों पर अत्याचार करते हैं। रात – दिन मेहनत करने के बाद भी उनका जीवन असुरक्षित और अभावग्रस्त है। संथाल पुलिस की मिलीभगत के कारण आदिवासी मैना को फैक्टरी का विरोध करने के जुर्म पर लगाया जाता है। कहना सही है कि पूँजीपति और पुलिस आदिवासियों पर सिर्फ इल्जाम ही नहीं लेती बल्कि उन्हें हवालात में बंद करके उनका यौन शोषण भी करती है। यह कितनी घृणास्पद बातें है जो पुलिस की वर्दी पर लगा एक दाग है।

5.4 आतंक और कुटिलता –

चुनाव के समय जाति, रूपये, गुंडागर्दी, हत्या आदि का प्रयोग खुलेआम किया जाता है। 'सोनामाटी' उपन्यास में उच्चवर्ग के गजिंदर निम्नवर्ग के झगुड़वा की भैंस छिपकर खोल ले जाते हैं क्योंकि झगुड़वा ने गजिंदर के पार्टी को वोट नहीं दिया था। इस घटना को लेकर रामरूप सोचता है –''अब सोचो रामस्वरूप, शायद इस गरीब का मात्र इतना ही अपराध था कि उसने गजिंदर की पार्टी को नोट नहीं दिया। झगुड़वा के लिए कितना महंगा पड़ा यह चुनाव? वोट आया, अराजकता लाया। कहाँ ले जायेगी देश को यह व्यापक अराजकता? चुनाव की प्रतिक्रिया में जो गाँव में उपद्रव, अनाचार फैलेंगे उसे कौन देखनेवाला है? कानून – व्यवस्था की स्थिति दिनोदिन गंभीर होती जा रही है।''[15]

'देश जिंदाबाद' उपन्यास में भ्रष्ट नेताओं की कुटिलता का चित्रण हुआ है।.....सूरज दा..... तो पंचों, जय बोलों बेईमान की। क्योंकि आज देश में बेईमानों का राज है। और उनमें नंबरी अष्टभुजा। बेईमान सरीका बेईमान होना कोई विशेष बात नहीं। मगर सारा देहात जानता है कि इसने वर्षों तक

इलाके को लूटा। फिर भी जनसेवा की कुर्सी पर बैठा रहा। फिर आ रहा है, आपकी अदालत में।''[16]

5.5 वोट में राजनीति :–

जातिव्यवस्था भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख आधार स्तंभ है। जाति समसामयिक ग्रामीण जनता के राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करनेवाले तत्वों में प्रमुख स्थान रखती है। राम आहूजा के मतानुसार –''भारत में जाति और राजनीति को पृथक नहीं किया जा सकता। अतः राजनीति में जातिवाद, जाति का राजनीतिकरण के अतिरिक्त कुछ नहीं है।''[17] नेता राजनीति के द्वारा जातीयता का विष फैलाने का कार्य कर रहे हैं। जाति के आधार पर खड़ी राजनीति का यथार्थ चित्रण रामदेव शुक्ल कृत 'विकल्प' उपन्यास में देखने को मिलता है। जातिवाद का आधार लेकर चुनाव लड़ने वाले काँग्रेस पार्टी के ए.पी.साहब जी कभी कभार चुनाव क्षेत्र को उनके दर्शन देते हैं। ''जब – जब चुनाव हुए है काँग्रेस के रूपये और अपनी जाति के संगठन के बल पर एत्रपीत्रसाहब हर बार विजयी हुए हैं। वे जब तक जियेंगे, उन्हें कोई हरा नहीं सकता ऐसा विश्वास उन्हें भी है। उनकी जाति वालों को भी है।''[18] राजनीति के विकराल रूप ने आदमी – आदमी में दरार निर्माण की है। राजनीति ने जाति को अनन्य साधारण महत्व दे रखा है। और आज के परिवेश में भी यही हो रहा है। डॉ.प्रेमकुमार के अनुसार –''ग्रामांचल में राजनीति पहले भी थी किंतु उस समय औसत ग्रामीण उसकी उपेक्षा करता था। परंतु अब सभी गाँव और कस्बे राजनीति के संक्रामक रोग से ग्रस्त हो गए हैं।''[19]

विवेकी राय के 'सोनामाटी' उपन्यास में काँग्रेस दल का भुवनेश्वर और उसके साथी भारतेंदु तथा घनेश्वर यादव वोट का जातिवादी चार्ट तैयार करके अधिकाधिक वोट प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। उपन्यास में कहा है कि –''पुरोहित भगवान पांडेय के इर्द – गिर्द काफी वोट था और जातिवादी मायाजाल फैलाकर उन्हें फंसा लिया।''[20]

स्थानिक राजनीतिक पार्टियों के द्वारा भी कबूतरा समाज के उत्कर्ष की बातें करते हैं। किंतु राजनेता क्या – क्या कर सकते हैं, मैत्रेयी पुष्पा कृत 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में धीरज कहता है –''आतंक इन्हीं बातों से बनता है

वरन जनता डरे? आतंक ही योग्यता है। सूरजमान ने कॉंग्रेस की सभा में बम न फोड़ा होता तो राजनीति में उसकी भरती होती? परसराम को पार्टी में पदवी तब मिली जब उसने बीजेपी के दो नेताओं को चाकू से हलाल कर दिया था। ..... आज जिसके कहने पर छुरा दिखाया था, कल उसी के वोटरोंवाली हरिजन बस्तियों में आग लगा देते हैं।''[21]

5.6 पोलिंग बूथ पर कब्जा :–

'विकल्प' उपन्यास में लाठी तथा बंदूक का डर दिखाकर बूथ कब्जे में लेने की घटना इस प्रकार है –''बिहार में लाठी, भाला और बंदूक के जोर पर बूथों पर ही कब्जा कर लेने की प्रथा चल पड़ी है। कुछ लोग चुनाववाली जगह को घेरकर खड़े हो जाते हैं। उनके आदमी हथियारों से लैस बाहर भी खड़े रहते हैं। गाँव के लोग डर के मारे उधर रूख तक नहीं करते। हथियार वाले ही मिलकर सारे वोट अपने हाथों से बक्सों में डाल देते हैं। काम खतम। पिछले चुनावों से ही इस तरह की घटनाएँ होती आ रही है। इस बार ज्यादा हुई।''[22] 'सोनामाटी' उपन्यास में पूँजीपति दीनदयाल, हनुमान प्रसाद और गजिंदर गाँव के पोलिंग बूथ पर कब्जा कर वहाँ का सारा वोट अपने पक्ष में गिरवा लेते हैं। ''सोनार टोली के दो सौ से ऊपर वोट को दीनदयाल और गजिंदर सहित हनुमान प्रसाद के गुंडों ने घरों से बाहर निकलने ही नहीं दिया और पोंलिंग बूथ पर कब्जा कर सारा मत जो विरोध में जाता एक तरफ गिरवा दिलया।''[23]

5.7 पंचायत व्यवस्था में भ्रष्टाचार :–

आज समाज में पंचायत का रूप भ्रष्ट होता दिखाई देता है। आज पंचायत सामान्य लोगों के हित की रक्षा करने की बजाय उनका शोषण ही अधिक है। 'विकल्प' उपन्यास में राजापुर अंचल की पंचायत पर जमींदार चौबे का पूर्णतः अधिकार है। पंचायत का प्रधान अकालू है, पर सभी अधिकार चौबे के हाथ में है। अकालू के माध्यम से चौबे गाँव के लोगों को आतंकित कर भ्रष्टाचार से काफी पूँजी जमाता है। ''अकालू को परधान बनाने में चौबे की राजनीति ही काम कर रही थी। सीधा आदमी है। शाम को एक पाव ठर्रा पिला देंगे, जिस कागज पर चाहेंगे, उससे 'अकालू' लिखवाकर गाँव सभा की मोहर टीप देंगे।''[24]

पंचायत पर उच्चवर्ग का दबाव आज भी है। गाँव की पंचायत व्यवस्था को वर्तमान समय में भ्रष्ट रूप में देखा गया है।

5.8 पंचायत व्यवस्था :–

भारतीय ग्रामीण समाज का एक महत्वपूर्ण अंग पंचायत है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्राम पंचायतों का संगठन किया गया जिसे नया नाम 'पंचायतराज' दिया गया है। आधुनिक युग में 'पंचायतराज' का अंचल तथा गाँव के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में महत्वूपर्ण स्थान है। कृष्णकुमार बिस्सा के मतानुसार –''पंचायती राज का उद्देश्य ग्रामीण जीवन में प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना करना था किंतु महानगरों की राजनीति से जुड़कर अनेक विघटनकारी तत्व इस पंचायती राज में समाविष्ट हो चुके हैं।''[25] रामदेव शुक्ल लिखित 'विकल्प' उपन्यास भी पंचायत पर जमींदार चौबे के कुटिलता से प्राप्त किए अधिकार का पर्दाफाश करता है। राजापुर अंचल की पंचायत का प्रधान अकालू होते हुए भी अधिकार का गलत प्रयोग करना चौबे के लिए नई बात नहीं। ''अकालू को परधान बनाने में चौबे की राजनीति ही काम कर रही थी। सीधा आदमी है। शाम को एक पाव ठर्रा देंगे, जिस कागज पर चाहेंगे उससे..... अकालू लिखवाकर गाँव सभा की मोहर टीप देंगे।''[26] पंचायत व्यवस्था पर उच्चवर्ग और जमींदारों का ही अधिकार है। पिछड़ी जनजातियों को दिया गया आरक्षण सिर्फ कागज पर लिखने के लिए शोभनीय है। यदि गाँव की पंचायत आरक्षित है, तो वहाँ तिकड़मबाजी से काम लिया जाता है। आरक्षण अगर स्त्री के लिए है, तो नाममात्र उस स्त्री को हस्ताक्षर का अधिकार होता है। गाँव की सभी योजनाओं को तोड़ने – मरोड़ने का अधिकारी तो कोई उच्चवर्गीय ही कर सकता है। वर्तमान समय में अधिकांश ग्रामीण समाज में पंचायत का भ्रष्ट रूप ही देखने को मिलता है। 'हजार घोडो का सवार' उपन्यास में एक गरीब नारी पर पूँजीपाति युवक मिलकर बलात्कार करते हैं। अपराधी युवकों को सजा दिलवाने हेतु पंचायत बुलाई जाती है। पंच अपराधी से कहते हैं –''तू इसे ओढ़ना ओढ़ाकर अपनी बहन कह। किसी से ढाँग के नीचे से निकला गया। किसी को पाँच कोड़े लगाये गये। .....नौ छोरों के बापों के लगभग तीन सौ रूपये खर्च हो गये।''[27]

निष्कर्ष :–

आदिवासी जीवन की राजनीति जमींदार – पूँजीपतियों के हाथ का खिलौना है। गाँव के पुलिस और जमींदारों से मिलीभगत है। पुलिस जमींदारों के इशारे पर नाचते हैं। पंचायत व्यवस्था में हो रहे भ्रष्टाचार से सामान्य लोगों का जीवन त्रस्त हो चुका है। पुलिस के बढ़ते हुए अत्याचार से भी पिछड़ी जनजातियों का जीवन भयभीत हुआ दिखाई देता है जिसका चित्रण 'अल्मा कबूतरी' जंगल के आसपास, वनतरी, पिंजरे के पन्ना आदि उपन्यासों में दिखाई देता है। स्वतंत्रता के बाद चुनाव – वोट की घिनौनी राजनीति के गाँव में प्रवेश ने आदिवासी लोगों का शांति, सुरक्षा का जीवन अस्त – व्यस्त कर दिया है। रिश्वतखोरी, सत्ता – लोलुपता, साम्प्रदायिकता, कुटिलता, आतंक आदि का चित्रण हुआ है।

वर्तमान परिवेश में राजनीतिक जीवन अत्यंत भयावह, विकृत और चिंता का विषय बन गया है। राजनीति की लगभग सभी गलियाँ विकृत तथा भयावह बन चुकी है। परिणामस्वरूप गाँव टूट रहे हैं, सामाजिकता, सामूहिकता, नैतिकता विघटित हो रही है।

भारतीय आदिवासी समाज राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण करनेवाली प्रमुखताः दो संस्थाएँ थीं एक जातिगत पंचायत और दूसरी सरकार। भारतीय जनता गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी में बिता रही है। सत्तालोलुप वर्ग अपनी आँखें बंद किए हुए अपने स्वार्थ में लिप्त है। 'साँप और सीढ़ी', 'काला जल', 'बाहरी आदमी', 'नदी और सीपियाँ' आदि उपन्यासों में होनेवाले नैतिक मूल्यों के ह्रास की तरफ ध्यान दिया गया है। आज भारतीय समाज खास करके आदिवासी समाज राजनीति के चक्रव्यूह में फँस गया।

–: संदर्भ सूची :–

1. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, भूमिका से।
2. वनतरी – सुरेशचंद्र श्रीवास्तव, पृ. 11
3. भारत बनाम इंडिया – श्रवणकुमार गोस्वामी, पृ. 89
4. शैलूष – शिवप्रसाद सिंह, पृ. 4
5. वही, पृ. 92
6. पार – वीरेंद्र जैन, पृ. 70
7. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ.317
8. वही, पृ.132
9. विकल्प – रामदेव शुक्ल, पृ.113
10. जंगल के आसपास – राकेश वत्स, पृ.263
11. शैलूष – शिवप्रसाद सिंह, पृ. 52
12. पिंजरे के पन्ना – मणि मधुकर, पृ.64
13. आदिवासी विमर्श – सं.राणू कदम, पृ.24
14. वही, पृ.25
15. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ.314
16. देश जिंदाबाद – शैलेष पंडित, पृ. 73 – 74
17. भारतीय सामाजिक व्यवस्था – राम अहूजा, पृ.307
18. विकल्प – रामदेव शुक्ल, पृ.213 – 214
19. हिंदी के आँचलिक उपन्यास – डॉ.प्रेमकुमार, पृ.43 –44
20. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ.313
21. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ.275
22. विकल्प – रामदेव शुक्ल, पृ.265
23. सोनामाटी – विवेकीराय, पृ.311
24. विकल्प – रामदेव शुक्ल, पृ.1
25. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना – कृष्णकुमार बिस्सा,पृ.168
26. विकल्प – रामदेव शुक्ल, पृ.9
27. हजार घोडों का सवार – यादवेंद्र शर्मा, पृ.304

छष्ठम् अध्याय

धार्मिक संदर्भ में आदिवासी जनजीवन

प्रस्तावना –

आदिवासियों में पराशक्तियों पर गहरा विश्वास होता है। यह विश्वास अनेक स्तर पर होता है। आदिवासियों में ग्रामीण समाज की भाँति धर्म का विकसित स्वरूप, धर्म संबंधी मंदिर एवं विविध संप्रदाय तथा वाद आदि नहीं पाये जाते। आदिवासी समाज के व्यक्ति पूर्वजों एवं परंपरागत देवताओं की पूजा अवश्य करते हैं। पूजा प्रायः पशु – पक्षियों की बलि करके, मंत्रपाठ करके संपन्न की जाती है। आदिवासी अपनी जातीयता, संस्कृति, समाज व्यवस्था की रक्षा करना धर्म माना जाता है। अपने धार्मिक क्रिया धर्म के प्रति आदिवासी जीवन में गहरी आस्था होती है। धर्म और देवताओं का भय उन्हें सताता है।

आदिवासी विभिन्न राज्यों में देशों में मौजूद है, यह समाज जिनकी संस्कृति, रीति – रिवाज, परंपराएँ, रहन – सहन, अलग – अलग प्रदेशों में रहने के बावजूद भिन्न होते हुए भी सभी जनजाति शब्द में समाहित हो जाते हैं। विश्व के आदिवासियों के विश्वास, संस्कार और आदिमकालीन जनजातियों के अंधविश्वास पारम्परिक व्यवहार और विसंगत स्थितियों के बीच जनजातीय परिवेश की स्वाभाविकता का अपना एक विलक्षण आकर्षण है।

धर्म एक प्राचीन संकल्पना है। धर्म मूलतः पवित्र आचरण, नैतिकता, मानवीयता, शांति और सफल जीवन की महत्वपूर्ण पूँजी है। डॉ.हरदेव बाहरी के मतानुसार – ''धर्म वह मंदिर है जिसमें हमारे आदर्शों के दीप जलते हैं, जिनके प्रकाश में हम मन का संतोष, आत्मा का साक्षात्कार और जीवन के सुंदर लक्ष्य का स्वरूप देखते हैं।''[1] प्रेम, मानवीयता, आस्था, दायित्वबोध, संयम, नैतिकता, सहिष्णुता, अनुशासन, विवेक, मूल्य आदि धर्म के प्रधान तत्व है।

6.1 भूत – प्रेत एवं पूजा पाठ संबंधी मान्यताएँ –

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में चार पीढ़ियों की कथा है। कथा का प्रारंभ अधूरे किले से होता है। सुखराम पूर्वज किले के अधिकारी थे।

उत्तराधिकारी के लिए जो संघर्ष हुआ उसमें देवरानी जेठानी से प्रतिशोध लेती है। वह प्रेम प्रसंग में फँस जाती है। और अंत में उसका अंत होता है। उस देवरानी की अतृप्त आत्मा पुनः जन्म लेती है। उपन्यासकार के शब्दों में – ''यह कहानी चार पीढ़ियों तक फैली हुई है, लहू से इसकी नीवें रंगी हुई है।''[2] नट आदिवासी कोई सैध्दांतिक पूजा – पाठ नहीं करते। वह लोग समाज के व्यक्तियों, परंपरागत देवी – देवताओं की पूजा में विश्वास करते हैं। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में सुखराम अपने पूर्वजों का स्मरण तथा उन्हें नमन करते हुए कहता है –''मैं पापी हूँ, मैं अभागा हूँ। तुम्हारी तरह जोग नहीं हूँ।''[3]

राजेंद्र अवस्थी कृत 'जंगल के फूल' उपन्यास में नारायन देव की आराधना के समय सूअर की बलि चढ़ाने की प्रथा दिखाई देती है। गोंड आदिवासियों में भूत – प्रेत, देवी – देवताओं से भी महत्वपूर्ण है। जो काम देवी – देवता नहीं कर सकते, वह भूत कर सकते हैं। जब देव प्रसन्न नहीं होते तो भूत – प्रेतों का सहारा लिया जाता है।

6.2 रूढ़ि परंपरा –

समाज में बहुत – सी रूढ़ियों का निर्वहन धार्मिक अंधविश्वासों, झूठी प्रतिष्ठा के मापदण्डों के कारण किया जाता है। किसी भी साज विशेष या जन संस्कृति का, जीवन विषयक दृष्टिकोण का अध्ययन उस समाज में प्रचलित रूढ़ियों – परंपराओं के आधार पर किया जाता है। पिछड़ापन, बेकारी, अर्थाभाव, वस्तु बेचकर रूढ़ियों को निभाया जा रहा है। भोज देना, दान देना, यात्रा करना इसके प्रमाण है। उत्सव, देवी – देवता, जंगल, वन से संबंधित रूढ़ियाँ रही है। आदिवासियों के शोषण का एक कारण रूढ़ि परंपरा भी है। 'जंगल के फूल' उपन्यास में दूध लौटाना प्रथा के अनुसार जिस वंश में लड़की दी जाय, उसी कुल से एक लडकी ब्याहना, साहूकार का कर्ज अदा करने के लिए भगेला होना, देवी – देवता को प्रसन्न कराने के लिए बलि देना, शरीर गोंदना आदि प्रथाएँ रही है। 'जंगल के आसपास' में रखेल बनाना, अग्नि परिक्षा देना, बहुपत्नी प्रथा, बालविवाह, बलि प्रथा, दहेज प्रथा, सूतक प्रथा आदि का चित्रण हुआ है। 'शैलूष' उपन्यास में विजातीय अवैध संबंध रखने पर खंती प्रथा, विवाह में राशन बाँटकर मेहर प्रथा आदि। 'जंगल के दावेदार' में बीरसा को आंबा या अवतार मानना,

पढ़ाई करने से ख्रिश्चन होना ऐसा मानना आदि। 'वनतरी' उपन्यास में गुदना आदि।

आदिवासी जनजातियों में अंधश्रद्धा, अज्ञान के कारण रूढ़ि – प्रथा है। अग्नि प्रथा, बलि प्रथा, बहुविवाह, नशापन, जातपंचायत, भोज देना आदि प्रथाएँ शोषण का आयाम है।

6.3 अंधविश्वास :–

'सु – राज' उपन्यास में आनंद की विधवा बहू परिस्थितियों से हारकर फाँसी लेकर मर जाती है। उसकी मृत्यु के बाद अस्थियाँ हरिद्वार में बहाने को लेकर चर्चा होती है। गांगि का देवा से कहते हैं –''जब तक अभागन जिंदा रही, तुम लोग सताते रहे। .....अब तुम कहते हो, उसकी अस्थियाँ हरिद्वार में बहाएँ। ये नदी – नाले क्या कम पवित्तर है? इन्हीं का जल बहकर तो जाता है हरिद्वार।''[4] 'शैलूष' उपन्यास में गोवर्धन अपने बीमार पुत्र सुरजित का इलाज अस्पताल में न करके किसी ओझा को सौ रूपय देकर कराते हैं, तब पिता का विरोध करते हुए कहता है – ''बच्चू, तुमने मेरे सौ रूपए बिगाड़ दिए। यह सफेद सुअर तो ब्लाक से पालने के लिए खरीदा था मैंने। तुमसे किसने कहा कि इन मूर्खों और धोखेबाजों से पूजा कराओं? तीस – चालीस की शराब, बीस रूपये का मुर्गा, यानी कुल पौने दो सौ रूपये तुने इन गधो के आगे डाल दिया।''[5]

कबूतरा समाज में अजीबोगरीब अंधविश्वास प्रचलित है। कबूतरा समाज में गरीबी, अंधविश्वास इस कदर है कि जराजयपेशा ही उनकी जीविका है। आदिवासियों में बड़े – बड़े देवताओं की पूजा न होकर अपने पूर्वजों तथा ग्राम देवताओं की धूम – धाम से पूजा होती है। 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में वीर देवता को आदिवासी कबूतरा जाति का ग्राम देवता माना गया है। लिपी हुई चबूतरी पर बेर के पत्ते, पान का पत्ता, गुड़ और बकरी का खून चढ़ाया जाता है। रोटी का चूरमा और लाल कपड़ा तथा मद और तेल पास में रखकर पूजा को संपन्न किया जाता है। वे लोक वीर देवता में विश्वास रखते हैं। उपन्यास की कदमबाई कहती है –''वीर देवता बालकों की अरज जल्दी सुन लेते हैं।''[6] वीर देवता के अलावा वे लोग भूत, प्रेत, चुड़ैल आदि में भी विश्वास रखते हैं।

6.4 विविध मनौतियाँ –

आदिवासियों में मनौतियों का पालन विश्वास एवं निष्ठा के साथ किया जाता है। 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास की गाड़िया लुहार जाति के दीवी के गले में मनौती का तावीज ओझा द्वारा बांधा जाता है, जब दीवी रम्या से कहती है –''साँप की केंचुली है इसमें। मानता मान रखी है मैंने। जब पूरी हो जाएगी तो इसे पिछोला में डाल दूँगी।''[7] 'शैलूष' उपन्यास में भी करनट जाति अपनी रक्षा के लिए मान बाबा को रोट चढ़ाकर मनौतियाँ मानने की प्रथा का अंकन है। 'अग्निबीज' उपन्यास में रामपुर अंचल की लड़कियाँ प्रकोप से बचने के लिए, तो बहुएँ सुहाग के लिए वजमा नदी में जाकर मनौती मानती है। ''लड़कियाँ तो बजमा की मौती मानती है। वह आज भी नाचती – गाती कजरी की मिट्टी के लिए वजमा में ही जाती है।''[8]

6.5 देवी – देवता :–

आदिवासी लोग प्रकृति पूजक, हिंदू देवता के उपासक है। देवता को रक्षक, बीमारी दूर करनेवाला, फसल बढ़ानेवाला माना है। उसके नाम पर यात्रा करना, उत्सव मनाना आदि के चित्रण होते हैं। 'शैलूष' में सती मैया, दैतरा पीर, देवी विंध्यावासिनी। 'जंगल के आसपास', चट्टान की देवता', बागमत महाराज, 'पहाड़ी जीव' में कुक्कड़ देवता। जंगल जहाँ शुरू होता है' में सहोदरा माई, सोमेश्वर, 'वनवासी' में 'नाग देवता'। 'जंगल के फूल' में नारायण देवता, करदेंगल आदि परंपरागत देवी – देवता का वर्णन मिलता है।

6.6 बलि – प्रथा :–

आदिवासी देवी – देवता, भूत – प्रेत, डायन, चुड़ैल को संतुष्ट कराने के लिए बलि देने की प्रथा का निर्वहन करता है। धार्मिक, उत्सव – पर्व, विवाह, मृतक संस्कार आदि अवसर पर बलि देते हैं। बलि देना श्रद्धा का प्रतीक है, मुर्गी, बकरी, सूअर, कभी – कभी नर बलि देने की प्रथा दिखाई देती है। 'जंगल के आसपास' में अमावस्या के दिन ओझा द्वारा बलि समर्पित करना। 'जंगल के फूल' में गोंडो द्वार विविध पर्वों में मुर्गी, बकरी, भैस की बलि देना। 'कब तक पुकारूँ' में किल्ला पूरा होने के लिए नरबलि देना आदि का चित्रण है।

6.7 देवी – देवताओं में विश्वास :–

देवी – देवताओं का भारतीय धर्म तथा संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदू धर्म में राम, कृष्ण, शिव आदि प्रमुख देवताओं के साथ तैंतीस करोड़ देवी – देवताओं का भी अस्तित्व स्वीकार किया गया है। गाँव की जीवन प्रणाली भाग्य और प्रकृति पर निर्भर होती है। गाँव तथा आँचलिक जीवन में पाप – पुण्य, भूत – प्रेत, स्वर्ग – नर्क आदि धारणाओं पर विश्वास होता है। ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा का रूप पूजा – पाठ, भजन – कीर्तन, यज्ञ, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा आदि में देखा जाता है। कभी – कभी धनप्राप्ति, पुत्रप्राप्ति, भय और अंधविश्वास के कारण भी ईश्वर के प्रति बढ़ती आस्था को देखा जाता है। आदिवासियों में देव – पूजा प्रायः प्राकृतिक संकटों से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए ही की जाती है।

'सु – राज्य' उपन्यास में कुमाऊँ के पहाड़ी अंचल देवी – देवताओं के प्रति अटूट विश्वास दिखाई देता है। हिंदू, मुस्लिम और सिख एक – दूसरे के देवताओं के प्रति श्रद्धा भाव या विश्वास रखते हैं। सभी विपदाओं के समय देवी – देवताओं करी पूजा करते हैं। 'धार' उपन्यास के संथाल आदिवासी भाग्य में बड़ा विश्वास रखते हैं। इनका सबसे प्रसिद्ध देवता मारांबुरू है। संथाल आदिवासी जनखदान के कार्यारंभ के समय अपने – अपने देवताओं की पूजा करते हैं। ''किसी – किसी ने मारांबुरू, बघना देवी, कालीमाई, हनुमान जी, सर्व मंगला देवी की, जौकर की, तो किसी – किसी ने सिडथू – कानू और बिसरा मुंडा भी।''[7] संथाल जनजातियों में देवताओं का भय तथा शाप भी पाया जाता है। 'सोनामाटी' उपन्यास में विभिन्न देवी – देवतओं का स्थान महत्वपूर्ण है, जिसमें राम, कृष्ण, शिव के साथ – साथ ढीह बाबा, रज्जे बाबा, सतिमी, नाथ बाबा, बन्नी दाई, महावीर, शीतला माता, गंगा मइया आदि देवताओं को भी विशेष महत्व है।

शिवप्रसाद सिंह कृत 'शैलूष' उपन्यास में आदिवासी जनजातियों में देवताओं के प्रति विश्वास के दर्शन होते हैं। करनट जाति में सती मइया, नथिया, बंजारिन, मखदूम साहब, मानगुरू, दैतरा बीर आदि देवतओं के प्रति विश्वास का भाव प्रकट होता है। सरदार अपने पुत्र ननकू से कहता है –''आज

नटों के गुरू मान बाबा और कुलदेवी नथिया की पूजी होगी।''[10] आदिवासियों में देवी – देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा और अंधविश्वास अधिक प्रमाण में देखा जाता है।

6.8 धार्मिक व्यक्ति द्वारा शोषण :–

आदिवासी अंधश्रद्धा होने के कारण पंडित, ओझा, पाप – पुण्य, वर्ग – नरक की बातें करके शोषण करते हैं। 'जंगल के दावेदार' में बीरमा मुंडा नए विचारों का प्रतिनिधि है। अपने आपको भगवान का अवतार बताकर हिंसा न करना, नशापन न करना, शिक्षा लेना, रहने की स्वास्थ्य योग्य सुविधा बनाना आदि संदेश देता है। बिरसा शोषण नहीं बल्कि समाजोद्धारक है, जो मुंडा जनजातियों में समन्वय, एकता स्थापित करना चाहता है। बीरसा का बलिदान आज भी प्रेरणा स्त्रोत बना है। 'शैलूष' में ब्राह्मण घुरफेकन द्वारा होम यज्ञ में पच्चीस – पचास हजार रूपया दान लेना। 'वनवासी' में पंडित के कहने पर ही लड़की का सयानी होना मानना, झांडफूक करना, देवता का संचार होना, देवता का बोलना, भूत हटाना, डायन को भगानरा, बलि देना आदि के रूप में आदिवासियों का शोषण किया जाता है।

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त विवेचन विश्लेषण के पश्चात हम यह कह सकते हैं कि आदिवासी धार्मिक जीवन में विविध आयामों का अंकन हुआ है। आदिवासियों में अंधविश्वास, भाग्यवादिता, व्रत – उपवास, मनौतियाँ का चित्रण है। धर्म के आधार पर आदिवासी जीवन में विविध जाति – धर्म में भेदाभेद पाया जाता है। आदिवासी जीवन में धर्म ढोंगी और स्वार्थी पंडित – पुरोहित, ओझा और पूँजीपाति वर्ग के हाथ की कठपुतली बना पाया जाता है। आदिवासी धार्मिक जीवन में देवी – देवताओं के प्रति श्रद्धाभाव 'शैलूष', 'सोनामाटी', 'अल्मा कबूतरी', 'जंगल के फूल', 'धार' आदि उपन्यासों में देखने को मिलता है।

आदिवासी जीवन में धार्मिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग 'बलिप्रथा' है। पूजाओं में बलिप्रथा का आयोजन किया जाता है। धार्मिक जीवन आज भी धार्मिक अंधविश्वास रूढ़ियाँ, पाखंड, शोषण आदि का चित्रण हुआ है। आदिवासी समाज जाति – प्रथा पर श्रद्धा रखता है। जात, गोत्र का संबंध संस्कार से

जुड़ा है। आदिवासी समाज अपनी संस्कृति की रक्षा कर रहा है। पुनर्जन्म पर विश्वास होने का प्रमाण मृतक संस्कार है।

आदिवासियों की समाज व्यवस्था वनो, जंगलों पर निर्भर है। अंधविश्वास का प्रभाव होने के कारण अनेक रूढ़ियाँ, परंपराएँ बनी है। देवी – देवता, हिंदू देवता के समान तथा जंगल से संबंधित है। बलिप्रथा का व्यापक प्रभाव है। उनके व्यवसाय वनों पर आधारित है।

—: संदर्भ सूची :—

1. प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश – डॉ.हरदेव बाहरी, पृ.8
2. हिंदी में आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन – बी.के.कलासना, पृ. 107
3. वही, पृ. 107
4. सुराज्य – हिमांशु जोशी, पृ. 44 – 45
5. शैलूष – शिवप्रसाद सिंह, पृ.88
6. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 202
7. पिंजरे में पन्ना – मणि मधुकर, पृ.52
8. अग्निबीज – मार्कडेय, पृ.20
9. धार – संजीव, पृ.138
10. शैलूष – शिवप्रसाद सिंह, पृ.130

सप्तम अध्याय

आदिवासी जनजीवन केंद्रित साहित्य : भाषा शैली

प्रस्तावना :

साहित्य का मूल्यांकन उसके कलापक्ष और भावपक्ष को ध्यान में रखकर किया जाता है। मनुष्य का शरीर कलापक्ष है तो आत्मा भावपक्ष। हिंदी समीक्षा शास्त्र में शिल्प का प्रयोग सामान्यतः रचना विधान, रूप रचना, शिल्प – विधि, रचना कौशल आदि के अर्थ में किया जाता है। जब हम किसी वस्तु के निर्माण में जिस उपकरण को उपयोग में लाते हैं, वही उस वस्तु का शिल्प विधि कहा जाता है। डॉ.भाऊसाहेब परदेशी के अनुसार – ''साहित्य की शिल्प विधि का संबंध बाहरी रूप योजना और भीतरी लक्ष्य साधना से है।''[1] शिल्प – विधि के लिए अंग्रेजी में एक्सप्रेशन, टेक्नीक, क्राफ्ट आदि शब्दों का प्रयोग होता है। 'शिल्प' शब्द की नहीं अपितु शिल्प – विधि को समझाते हुए डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है –''शिल्प – विधि के इस मोटे रूप से यह प्रकट है कि किसी भाव को एक निश्चित रूप देने के लिए जो विधान प्रस्तुत किए जाते हैं, वही उस कला की शिल्प – विधि है।''[2]

शिल्प के बाह्य रूप पर विचार करने के पश्चात् इसके साध्य को स्पष्ट करना अनिवार्य है। साहित्यकार अपनी अनुभूतियों को, कल्पनाओं को, विचारों को रूपायित करने के लिए साहित्य का आधार लेकर उन्हें शब्दबद्ध, लिपिबद्ध करता है। इन्हें स्पष्ट करने की विविध रीतियाँ, पद्धतियाँ होती है। अतः हिंदी के आदिवासी जीवन केंद्रित साहित्य में शिल्प विधान निम्नलिखित रूप में स्पष्ट है –

7.1 भाषा –

भाषा कथा साहित्य का मूल उपकरण माना जाता है। कथा साहित्य की भाषा का एक रूप आँचलिक भाषा भी है। जन – भाषा और लोकरूचि का परिमार्जित रूप आदिवासी जीवन केंद्रित साहित्य में मिलता है। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास की रचना के केंद्र में राजस्थान और ब्रज प्रदेश की सीमा पर

बसा बैर गाँव और उसमें रहते आदिवासी नट है। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास की भाषा पर 'करनटों' की भाषा का संस्कार है। डॉ.रांगेय राघव ने बोली का प्रयोग संवादों में न कर वातावरण के चित्रण में किया है। ''फागुन आ गया। नई उष्मा पुलकित हो उठी। चारों तरफ एक नवीन जीवन का संचार हो गया। रूँधे हुए पर्वतों पर अब पत्थर तक अपनी सूनी परिधियों पर नये – नये स्पंदनों से विभोर हो उठे और मैदानों पर उनकी वासना का ताप छा गया। फगुनौटी झकोरे – ले – लेकर चलने लगी। लहर खिंच आई। पीपल पर लाल – लाल, पत्तियाँ निकल आई। पावों के पास से हवा ने उसके सूखे पत्तों को दूर – दूर उड़ा दिया और नया पेड़ ऐसा हिल – हिलाकर चमचमाने लगा कि हिरनी भी लजा गई।''[3]

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में अपना शिल्प विधान बदला है। प्रस्तुत उपन्यास की भाषा मूर्तता, यथार्थता, वर्णनात्मकता, संवदेनात्मकता एवं संम्प्रेषणीयता आदि भाषागत गुणों से संपन्न है। भाषा की मूर्तता के कारण 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में आदिवासी कबूतरा जाति की विशेष गरिमा उभरी है। जितनी भाषा मूर्त है उतनी ही सृजनात्मक भी है। वे लिखती है –''दारू की भठिठयाँ, आसपास गँधाते कनस्तर और घड़े, चौक के किनारे फैली नीली कीचड़ से उठती खटासभरी हवा.....कदमबाई के इर्द – गिर्द बसी दुनिया पर पर्दा ढांक दिया। पालने की चमक – दमक में सफर करती माँ ने बच्चा हथेलियों पर उठा लिया। नन्हीं – सी नाक भिड़ाकर सिर हिलाती हुई उसे चूमने लगी – तू मंशा माते का रूप।''[4]

'अल्मा कबूतरी' उपन्यास में खानाबदोश आदिवासी कबूतरा जाति के लोगों के जीवन की कहानी है। वे लोग गालियों को अपनी संपत्ति मानते हैं। माँ, बहन, साला, साली आदि को केंद्र में रखकर गालियों का प्रयोग करते हैं जैसे –''मादरचो.....हरामी, बेटी के लबडे! हमें अगूँठा दिखाकर जा रहा था।''[5]

शानी उर्दू, हिंदी और अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार हैं। उन्होंने हिंदी भाषा की खड़ीबोली के प्रचलित रूप को अपनाया है। शानी जी की भाषा के बारे में राजेंद्र यादव लिखते हैं –''शानी के पास विलक्षण, संवेदनशील, संतुलित, तराशी हुई भाषा के साथ – साथ शेर कहने जैसी सधी और सशक्त

भाषा है।''[6] 'साँप की सीढ़ी' उपन्यास में शानी लिखते हैं –''धानमाँ, देखो तो, मेरी किस्मत देखो यहाँ आकर करीब – करीब सभी कोई – न – कोई पाप में फँसा हुआ है। लेकिन कोई मुझे कह दे, मेरी ओर उंगली भर उठा दे..... उन सब का यह बदला है। खैर.....खैर.....।''[7]

शानी व्यावहारिक भाषा का प्रयोग करने के लिए यथा – स्थान अपने साहित्य में अरबी, फारसी, तत्सम, तद्भव, स्थानीय और हिंदी से इतर भाषाओं के अनेक प्रचलित और अल्प प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। अरबी, फारसी शब्दों की तो उनकी भाषा में भरमार है, क्योंकि वे स्वयं मुस्लिम है। शानी ने अपने जीवन का कुछ अंश ओरछा के आदिवासियों के बीच गुजारा। परिणामतः आदिवासी बोली एवं भाषा का प्रयोग उनके उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है। जैसे – टोकनी, पोत, डेंगुर, मातादाई, सलपी आदि।

अवस्थी जी ने 'जंगल के फूल' उपन्यास में आदिवासी जीवन संबंधी उपन्यासों के शिल्प वैभव का पूरा – पूरा प्रयोग किया है। अवस्थी की भाषा में विविधता है। 'जंगल के फूल' उपन्यास में ज्यादातर पात्र आदिवासी है। उनके मुँह से आदिवासी भाषा के शब्द निकलते हैं –''तुम पर तो मैं जान देती हूँरे, पर दईमारा सन्तू हाथ धोकर पीछे पड़ा है। रोज मेरी देहरी छूता है और बीर के कान भरता है। बीर है सो उस पर जान देता है। जान क्यों न दे, दोनों चिलम भाई जो ठहरे। दम भाई सो सगा भाई।''[8] संवाद में दईमरा, देहरी, बीर, दम, चिलम आदि शब्द आदिवासी भाषा के हैं। 'जंगल के फूल' उपन्यास में मिश्रित भाषा, क्लिष्ट भाषा, लोकभाषा, सूत्रात्मक भाषा आदि भाषागत विशेषताएँ भी दृष्टिगोचर होती है। सूत्रात्मक भाषा जैसे –''समय गतिशील है। धरती की धुरी अड़ सकती है, उसका घुमना तक रूक सकता है किंतु समय कभी नहीं रूका न कोई उसे रोक सकता है।''[9]

वीरेंद्र जैन के उपन्यास सीधे सरल शिल्प में यथार्थ की पहचान कराते हैं। वीरेंद्र जी का संवेदना जगत एक अनुभव बहुत सूचना बहुल संसार है जिसकी सामग्री अवसर ही उपलब्ध स्थान सीमा से ज्यादा पड़ जाती है, इसलिए वह एक – एक वाक्य में ठूँस – ठूँस कर भरी जाती है। वीरेंद्र जैन की भाषा के बारे में अर्चना वर्मा ने लिखा है – वीरेंद्र के पास न धैर्य, न सहानुभूति। वे

उसे जीवन की जटिलता, सत्य की बहुमुखता, दुविधा जैसे नामों से महिमा मंडित नहीं करते। उनकी अधीरता के पास अनावश्यक साज – संभार की लाद – फांद के लिए भी फुरसत नहीं। अलंकृतहीन शिल्प की सादगी में बेला गलपेट ध्यान इन उपन्यासों में यथार्थ का सीधा परिचय है।

'पार' उपन्यास की भाषा अनुशासित है। प्रस्तुत उपन्यास की भाषा प्रवाहमयी और कहीं – कहीं काव्यमयी है। भाषा के अलावा स्थानीय बोली – बोली का भी मनोहर प्रयोग हुआ है।

अवस्थी की भाषा में नाटकीयता, भावात्मकता, आँचलिकता, प्रतीकात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता के गुण दिखाई देते हैं। नाटकीयता का गुण अवस्थी जी की भाषा को चार चाँद लगा देता है। वे लिखते हैं कि – ''मेरे लिए बड़ी बात थी यह। जिस धरम में आदमी है, उसी की बात नहीं जानता। मैं सोचने लगी कि क्या सभी ईसाई ऐसे है? वे अपने धरम को नहीं जानते। उन्होंने अपनी पोथी ही नहीं बाची। नहीं, यह नहीं हो सकता। जोसेफ शायद बात टालने के लिए बात बना रहा है।''[10] भावात्मकता गुण भी प्रस्तुत उपन्यास में दिखाई देता है। एक नारी की जीवन वेदना किस प्रकार पाठकों को करूणा की परमसीमा पर पहुँचती है। जैसे –''इस दुनिया में औरत बनना सबसे बड़ा पाप है। ईशु ने जिसे सबसे खूबसूरत चिराग कहा है, मुसलमानों ने जिसे खुदा का नूर नाम दिया है, और हिंदुओं ने जिसे साक्षात लक्ष्मी माना है, वह वास्तव में पाप की गठरी के सिवाय कुछ नहीं है। .....वह संसार का निर्माण करती है तो उसके साथ यह छल कैसा?''[11] उपन्यासकार की भाषा पात्रानुसार बदलती हुई दिखाई देती है। अशिक्षित पात्रों की भाषा निम्न कोटि की होती है। बंजारी नामक अशिक्षित युवती की भाषा –''चेतमा से पहुँचे बंजारी का राम – राम पियारे आवा व तापे व बीर व पशु पडौस के ककू, ममू, भई – भुजाई, सबको जो हो जान पहचान का।..... मेरा जोसेफ अच्छा आदमी है। उसके ये गुन मेरे को सीख दिया है। बाबिल बरीया किताब है। उसमें बड़े व अच्छे – अच्छे विरतांत लिखे हैं। गसरी अच्छा गोई है। खूब मीठी – मीठी बात करता है।''[12] अवस्थी की भाषा में भावात्मकता, चित्रात्मकता, प्रवाहमयता, आँचलिकता, पात्रानुकूलता आदि गुण विद्यमान है।

7.2 शैली –

कथाकार जिस प्रकार से अपने विचारों एवं भावों को उपन्यास में प्रकट करता है उसी को 'शैली' कहते हैं। अवस्थी ने अपने साहित्य में विविध शैलियों का प्रयोग किया है। उन्होंने वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, संवात्मक शैली, नाटकीय शैली, डायरी शैली, पत्र शैली, लोकथात्मक शैली एवं स्मृतिपरक शैली का प्रयोग किया है। 'सूरज किरण की छाँव' उपन्यास में बंजारी के विगत जीवन का प्रसंग, बंजारी को कंगला की याद आना आदि स्मृतिपरक शैली का चित्रण है।

शानी जी के साहित्य की मुख्य शैली वर्णनात्मक शैली है। शानी ने प्रकृति, गाँव व परिवार की स्थितियों के साथ – साथ गाँव वालों के पेशे व आपसी संबंधों का सुंदर चित्रण किया है। ''यह पैशा भी अब बहुत दिनों चलेगा नहीं, दंडकारनी और खदान वालों में सलपी के बहुत से पेड़ साफ कर दिये हैं। जो थोड़ा बहुत रह गये हैं वे भी साफ हो रहे हैं। देखती हो लोग कितने बेईमान हो गये हैं। बाह्मणी में एक सलपी पेड़ पर पाँच डेसी माल जमीन का झगड़ा काका – भतीजे के बीच बरसों से चल रहा है उसी के लिए पिछले महीने मार – पीट तक ही हो गयी है और दोनों एक – दूसरे के खून के प्यासे हो गये हैं।''[13] शानी जी ण्ने मानसिक अंतर्द्वद्वों और आत्मविश्लेषणात्मक से युक्त भावात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। धान माँ के हृदय में उठने वाले भाव मानसिक अनुभूतियों को डकेरने का काम ही समझा जाता है। शानी जी ने वर्णनात्मक शैली, भावात्मक शैली के अलावा पूर्व दीप्ति, डायरी, पत्रात्मक आदि शैलियों का यथोचित प्रयोग साहित्य में किया है।

अवस्थी जी ने 'जंगल के फूल' उपन्यास में विविध शैलियों का प्रयोग किया है। लोकनृत्य, घोटुल का वर्णन, अंग्रेज की आँखों से रात में भूत प्रेत को देखना आदि का वर्णन वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत हुआ है। लोककथात्मक शैली का वर्णन –''किसी जमाने का बस्तर महाराजा के सिपाही एक नदी के किनारे जा रहे थे। नदी के दूसरी ओर एक दूसरे राज्य के राजकुमार, एक नंदी के साथ चला जा रहा था। राजा के सिपाही राजकुमार के रूप और नंदी की छवि देखकर बहुत प्रभावित हुए। .....जहाँ भी राजकुमार गया, नंदी बराबर उसके

साथ रहा। नंदी की सहायता से राजकुमार ने पास – पड़ोस के राजाओं को भी परास्त कर दिया। सारे राज्य में सुख और शांति थी।''[14]

'धार' उपन्यास की भाषा आदिवासी परिवेश को मूर्तता प्रदान करती है। भाषा में संप्रेषणीयता का भी निर्वाह हुआ है। संजीव ने आदिवासी भाषा की तासीर को जाना है। आदिवासियों की गाली – गलौच को प्रस्तुत करते हुए लिखते है –''रंडी तें। तेरी माँ रंडी, तेरा बहन रंडी, तेरी बेटी – रंडी। तेरा गुस्टी खानदान रंडी।''[15] संजीव की भाषा में सचमुच की ताकत है। उपन्यास का शिल्प सरल, इकहरा और वर्णनात्मक है। कथा रचना में वर्णनात्मकता के साथ ही यथार्थ और लोकतत्व का कुशल संयोजन मिलता है। मैना द्वंद्वग्रस्तता और मानसिकता को मनोविज्ञान के सहारे स्पष्ट किया है।

7.3 मुहावरे तथा कहावतें :–

आदिवासी लोग ज्यादातर आपसी बातचीत में मुहावरों तथा लोकाक्तियों का प्रयोग करते हैं। 'जंगल के फूल' उपन्यास में आवश्यकतानुसार मुहावरों, लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। जैसे – हवा की लहरों से लिपटना, शेर दिल होना आदि। मुहावरेदार भाषा के प्रयोग के कारण पुष्पा जी की उपन्यास शैली में चार – चाँद लगे हैं। जैसे – ''राजा की रानी एक बाँदी हजार, बाप वैतरनी पार कर गया, गया ऊँट पहाड तले।''[16]

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में रांगेय राघव ने मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है। जैसे – जान है तो जहान है, सौत – सौत को काटती है, कढ़ी खाया मन का मेल न करें, सुपना तो सुपना ही होता है आदि।

7.4 विविध शब्द प्रयोग –

अवस्थी की भाषा में विविधता है। पात्रों तथा परिस्थितियों के अनुकूल शब्दों का प्रयोग करता है। उपन्यासकार वर्णन करते समय ज्यादातर खड़ीबोली का प्रयोग करता है। 'जंगल के फूल' उपन्यास में ज्यादातर पात्र आदिवासी है। अतः पात्रों में आदिवासी भाषा के शब्द निकलते हैं –''तुम पर तो मौ जान देती हूँ रे, पर दईमारा शन्तू हाथ धोकर पीछे पड़ा है.....जान क्यों न दे, दोनों चिलम भाई जो ठहरे। दम भाई सो सगा भाई।''[17] राजेंद अवस्थी जी के कथा – साहित्य की भाषा में जो विविधता मिलती है वह उन्हें उपन्यासकार के रूप में

महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कराती है। उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी शब्दों का प्रयोग पात्रानुकूल हुआ है। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में रांगेय राघव ने उर्दू, अंग्रेजी तथा स्थानीय शब्दों का भी प्रयोग किया है। उर्दू शब्द जैसे – मुहब्बत, उम्र, बादशाह, शहजादा, तस्वीर आदि। अंग्रेजी शब्द जैसे – मेन, वेल, डैडी, गेट आउट आदि। स्थानीय शब्द जैसे – भेना, वजमारा, करखाना आदि।

7.5 आदिवासी और भाषा :–

भारत में आदिवासियों के बीच जो भाषाएँ प्रचलित है, उनकी संख्या सवा सौ से अधिक है। भारत के विभिन्न भागों में बसे आदिवासियों की भाषाओं को भाषाविज्ञानियों ने चार भाषा परिवारों में वर्गीकृत किया है। कुछ आदिवासी भाषाएँ आर्यभाषा परिवार के अंतर्गत सम्मिलित है। शेष आदिवासी भाषाएँ द्रविड़, आस्ट्रिक, तिब्बत – बर्मी भाषा परिवार के अंतर्गत समाहित हैं। ध्वनियों की दृष्टि से भी आदिवासी भाषाएँ पर्याप्त समृद्ध है। अभिव्यक्ति के लिए हिंदी के प्रायः सभी स्वर और व्यंजन इन भाषाओं में प्रचलित है। विभिन्न भाषा परिवारों के आदिवासी विभिन्न क्षेत्रों में बसकर भी सुदीर्घ काल तक साथ – साथ रहते आये है। स्वाभाविक रूप से सबकी भाषाओं में एक दूसरे की शब्दावली का आदान – प्रदान मिलता है। भारत के आदिवासी केवल आर्योत्तर परिवार की भाषाओं का व्यवहार नहीं करते, बल्कि उनका एक बहुत बड़ा वर्ग है जो मुक्त रूप से आर्यभाषा परिवार की भाषाओं का व्यवहार करता है। आदिवासियों द्वारा व्यवहृत इन आर्यभाषाओं की रूप रचना के विश्लेषण निष्कर्ष यह प्रमाणित करता है कि राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ उनकी प्रत्यक्ष समता है। हिंदी भाषी क्षेत्र में प्रचलित जनजातीय भाषा के साथ हिंदी के समता निर्देश की आलोचना लोग कर सकते हैं कि हिंदी भाषी क्षेत्र में बहुसंख्यकों की भाषा को इन आदिवासियों ने या तो अपना लिया है इन पर उनका प्रभाव पड़ा है। हिंदी भाषी क्षेत्र से सुदूर पूर्व – असम, मिजोरम और त्रिपुरा राज्यों में प्रचलित 'चकमा' भाषा। दादा, मामी, खाद, गाड़ी, दान, दुःख, नगर, नाच, रंग, रस, शंख, घंटा आदि ऐसे अनेक शब्द है जो हिंदी और चकमा भाषाओं के समान अर्थ के द्योतक है। ऐसे शब्दों में हिंदी के साथ चकमा भाषा की पूर्ण समान है। कुछ शब्द ऐसे है जो चकमा भाषा में

प्रचलित नहीं है। दर्द, पता, पेड, समद्र जैसे शब्द। ये शब्द चकमा भाषा में प्रचलित नहीं है। हिंदी मामा के विकल्प मामू, भाई के विकल्प में भई। जिनमें दोनों भाषाओं में ध्वन्यात्मक अथवा रूपगत समता का कहीं कोई संकेत भी नहीं मिलता।

रूई – तुला
पति – नेक
बेटा – पुआ
पत्नी – मोक
झील – पुकूर
दादी – बेइ

जनजातीय भाषा – भाषियों के शारीरिक गठन के अनुसार उनके मुख्यसूख के लिए आर्यभाषा के रूप में जो परिवर्तन होते गए, उनसे चकमा भाषा की आकृति में भिन्नता प्रतीत होती गई।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बसे आदिवासियोंने भी अपनी – अपनी भाषाओं को अपने हृदय के समीप रखा है। भारत में आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से आदिवासियों का शोषण तो हुआ ही है, वे सांस्कृतिक शोषण के भी शिकार रहे हैं। आदिवासी जब बोलते है तो उनसे संगीतमयी ध्वनि निकलती है।

भारतीय संविधान में द्रविड़ परिवार की तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं को मान्यता मिलती है। उनका मुख्य रूप से प्रचलन क्षेत्र तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल है। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त ऐसे भाषा भाषी बिहार, उड़िसा, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र आदि राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों में बसे हुए हैं। द्रविड परिवार की जनजातीय भाषाओं में कुडुख की प्रधानता है। भाषा विज्ञानियों के अनुसार कुडुख आदिवासी दक्षिण भारत से ही उत्तर की ओर आये। कुडुख आदिवासियों की निजी मान्यता है कि वे मूलतः कर्नाटक के निवासी थे, जहाँ से जीविका की खोज में उत्तर की ओर बढ़े।

कुडुख द्रविड भाषा परिवार का अंग है। द्रविड़ परिवार की तमिल भाषा से इनके साम्य शब्द –

कुडुख	तमिल	हिंदी
पल्ल	पल	दाँत
पचगो	पूच्चि	कीड़ा
उक्का	उक्का	बैठना
चाँडे	चटक्कु	शीघ्रता

जनजातीय साहित्य का विकास जनजातियों की अपनी साहित्यिक और विषयों के आधार पर ही हो सकता है। प्रत्येक जनजाति का अपना मौखिक लोक साहित्य है। प्रत्येक जनाति के गीतों का अपना विशेष लय – विज्ञान है, विशेष छंद, उपमान और गीत भेद है। जब जनजातीय रचनाकार साहित्य लेखन आरंभ करता है तो बचपन से सुनी हुई कहानियों, गीतों और काव्य – रूपों की वह संपदा, जो उनके मानस में माडल के रूप में विद्यमान रहती है, उसकी प्रेरणा और दिशा बन जाती है। जो जनजातीय ललित साहित्य लिखा गया है, वह लोक – साहित्य की भूमिका से घनिष्ठतया संबंध है। उसके छंद, लय योजना, मुहावरे, उपमान और प्रकार की नहीं, विषय भी लोक साहित्य और लोक – जीवन के हैं। मुण्डारी, संताली आदि भाषाओं के कवि जदुर, गेना, जापि आदि लोकगीत भेदों का अनुसरण करते हैं।

भारत के सुदूर आदिवासी प्रदेशों तक हिंदी के विस्तार ने आदिवासी समाज में चेतना जगाने का काम किया। आदिवासी साहित्यकार हिंदी भाषा के जरिए या अनुवाद के माध्यम से अपने भीतर जन्मे बोध व चेतना और प्रतिरोध व आक्रोश को साहित्य की हर विधा के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा है। पूर्वोत्तर में तथा झारखण्ड के कुछ हिस्से में ये साहित्य रोमन लिपि में भी लिखा जाने लगा। आदिवासियों के पास अपनी कोई लिपि नहीं थी। अंग्रेजों उन्हें रोमन लिपि दी तो सबका अपनी – अपनी भाषाओं का लोक – साहित्य संकलित होना शुरू हो गया है। हिंदी भाषा क्षेत्रों में – बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेशा आदि में जब आदिवासी हिंदी के संपर्क में आए तो उन्होंने हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। भारत के हिंदी भाषी राज्यों के द्रविड व आस्ट्रिक भाषा – भाषी रचनाकारों ने भी देवनागरी लिपि अपना ली। निर्मला पुतुल, रामदयाल मुण्डा, वी.आर.राल्टे, कृष्णचंद्र टूडू, सी.

आर.मांझी, शिशिर टुडू, बासदेव बेसरा, शिवलाल किस्कू , प्रीती मूरमू, महादेव टोप्पो, ग्रेस कुजुर, महावीर उराँव, हरि उराँव, शरण उराँव, ज्योति लकडा, शांती खलको, नितीशा खलको, नवीन मुंडू, वंदना टेटे, ओली मिंज, हेसेल सारू, अनुज लुगुन, ग्लोरियरा सोरेंग, देवेंद्र नाथ चम्पिया, दमयंती सिंकू, डिबरो बिरूली, मारेाजी देवगम, धनिक गुडिया, सरिता बडाइक, रूपलाल बेदिया, सिद्धेश्वर सरदार जैसे साहित्यकर भी हिंदी और अपनी भाषाओं यानी दोनों भाषा में लिख रहे हैं। हिंदी को आदिवासी भाषाओं ने नई सांस्कृतिक अवधारणाएँ, जीवनशैली, सम्यक – दृष्टि, शब्द, मुहावरे, प्रतीक और बिम्ब भी दिए हैं।

रामदयाल मुण्डा ने मुण्डारी और हिंदी दोनों भाषाओं में कविता, गीत, धर्म जैसा ग्रंथ लिखा है। निर्मला पुतुल संताल है। उनकी संताली – हिंदी में प्रकाशित द्विभाषी पुस्तक 'अपने घर की तलाश में' की हिंदी में अनुवादित कविताएँ देश की सीमा छोड़कर आंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँच गई है।

वर्चस्ववादी प्रतिमान और प्रतीक आज या कल हिंदी में ही नहीं है, हिंदी से इतर भाषाओं में भी रहे हैं। जैसे –

''इन में भी वही आक्रोशित है
जो या तो अभावग्रस्त है
या तनावग्रस्त हैं
बाकी तटस्थ हैं
मंत्री जी की तरह
जो आदिवासिय का राम भूल गए
रेमंड का सूट पहनने के बाद।''

– अनुज

समूचे भारत में लिखित आदिवासी साहित्य नगण्या है। आदिवासी साहित्य के नाम पर हमारे पास आदिवासी वाचिक साहित्य है जिसे हम आदिवासी लोक साहित्य कह सकते हैं।

कुछ बड़े जनजातीय वर्ग अभी भी भाषाई मान्यता की दृष्टि से उपेक्षित है। जैसे –

''1. भील समुदाय और उनकी भीली भाषा

2. गौंड समुदाय और उनकी गौंडी भाषा
3. बंजारा समुदाय और उनकी बंजारा भाषा
4. मिजो समुदाय और उनकी मिजो भाषा
5. खासी समुदाय और उनकी खासी भाषा
6. नागा समुदाय और उनकी आओं, अंगामी लोथा, कुकी भाषा।''

इसी प्रकार कुडुख, काकबरक आदि भी अपनी पहचान और मान्यता के लिए संघर्षरत है। साहित्य सृजन की दृष्टि से आदिवासी समुदायों में प्रचलित वाचिक साहित्य जनजातीय लोक साहित्य ही आदिवासी साहित्य है। आधुनिक समुदाय के रचनाकारों द्वारा हिंदी तथा अपनी – अपनी मातृ बोलियों, मातृ भाषाओं में जो आधुनिक साहित्य विभिन्न विधाओं में रचा जा रहा है उसे ही आदिवासी साहित्य माना जाना चाहिए। आदिवासी समाज और आदिवासी मन की व्यथा को आदिवासी ही समझ सकता है। हिंदी साहित्य अनेक भारतीय भाषाओं में ऐसे रचनाधर्मी है जिन्होंने आदिवासियों पर केंद्रित रचनाएँ लिखी है। बहुत सारे आदिवासी साहित्यकारों ने हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में साहित्य लिखा है। भारत में जितने भी आदिवासी समुदाय है सभी की अपनी – अपनी संस्कृति और सामाजिक परंपराएँ हैं। आदिवासी समाज में समुदाय, गोत्र व्यवस्था और कुल व्यवस्था का विशेष महत्व है।

अनुवाद के रूप में अन्य सभी जनजातीय भाषाओं से आदिवासी साहित्य को हिंदी में लाने का सार्थक प्रयास हो रहा है। अन्य अनुवाद भी आदिवासी विशेषज्ञों के सहयोग से आदिवासी साहित्य का रूपांतरण हिंदी में कर रहे हैं।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः स्पष्ट है कि कुछ आदिवासियों को छोड़कर अधिकांश आदिवासियों की अपनी बोली और अपनी भाषा है। भाषांतरित रूप में अन्य सभी जनजातीय भाषाओं से आदिवासी साहित्य को हिंदी में लाने का सार्थक प्रयास हो रहा है। अवस्थी की भाषा में नाटकीयता, भावात्मकता, आँचलिकता, प्रतीकात्मकता एवं व्यंग्यात्मकता के गुण दिखाई देते हैं। 'जंगल के फूल' उपन्यास में लोकभाषा, सूत्रात्मक भाषा, क्लिष्ट भाषा, मिश्रित भाषा की

दृष्टिगोचर होती है। मैत्रेयी पुष्पा कृत 'अल्मा कबूतरी' उपन्यास की भाषा मूर्तता, यथार्थता, वर्णनात्मक, संवेदनात्मकता एवं संप्रेषणीयता आदि भाषागत गुणों से संपन्न है। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास की भाषा पर करनटों की भाषा का संस्कार है। आदिवासी लोग ज्यादातर आपसी बातचीत में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं।

—: संदर्भ सूची :—

1. राजेंद्र अवस्थी का कथा साहित्य – डॉ.भाऊसाहेब परदेशी, पृ.169
2. हिंदी कहानियों की शिल्प – विधि का विकास – डॉ.लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 3
3. कब तक पुकारूँ – डॉ.रांगेय राघव, पृ. 245 – 246
4. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 31
5. वही, पृ. 100
6. अट्ठारह उपन्यास – राजेंद्र यादव, पृ. 148
7. साँप और सीढ़ी – शानी, पृ.126
8. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ.87
9. वही, पृ.121
10. सूरज किरण की छाँव – राजेंद्र अवस्थी, पृ.131
11. वही, पृ.143
12. वही, पृ.142
13. साँप और सीढ़ी – शानी, पृ.30
14. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ.108
15. धार – संजीव, पृ.69
16. अल्मा कबूतरी – मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 31
17. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ.87

अष्टम् अध्याय

समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासियों की समस्याएँ एवं समाधान

प्रस्तावना –

स्वातंत्र्य प्राप्ति के साथ नई राजनीति, नया संविधान, समाजवाद, औद्योगीकरण, बाँध निर्माण, खान खदान का निर्माण, जंगल कटाई, नागरीकरण, सरकार की विकास नीति आदि के कारण आदिवासी जनजीवन प्रभावित हुआ। बढ़ती आबादी, औद्योगीकरण, नागरीकरण, पर्यटन की व्यवस्था, खानदान के कारण ठेकेदारों, पूँजीपातियों, मिल मालिकों की निगाहें जंगल – पहाड़ी अंचलों की ओर गई। कम दामों में आदिवासियों की जमींने हड़पने का कार्य हो रहा है। बिखरा हुआ आदिवासी समाज, राजनीतिक नेता का अभाव, कानून की अज्ञानता होने के कारण उन्हें फँसाया जा रहा है। जल, जंगल, जमीन से आदिवासियों को बेदखल किया जा रहा है। जंगल, जमीन जीविका का साधन है, आज उसे ही छीनने का प्रयास हो रहा है।

कोयला खदान, टेहरी बाँध आदि विकास योजना के साथ ही साथ पूँजीपातियों के लिए विश्राम, प्राकृतिक सौंदर्यास्वाद के लिए महल तथा जंगल ही बचे हैं। वहाँ का मूल निवासी को हटाया जा रहा है। अधिक मात्रा में जंगल कटाई होने के कारण पहाड़ उजड़ गए, जमीन बंजर बनी, खान – खदान से प्रदूषण बढ़ा, आदिवासी मजदूर, गुलाम बना।

जंगल, जमीन न रहने से आदिवासियों का विस्थापित होना, खान खदान, औद्योगीकरण से हुआ निकालना, स्वास्थ्य की समस्याएँ बढ़ना, विद्युत सयंत्र योजना से नगरों में उजाला फैला मगर आदिवासियों के झोपड़ी में अंधेरा ही रहा, रास्ते बनीं, वह सिर्फ सरकारी वाहनों के लिए परंतु आदिवासी नंगे पाँव से चलता रहा। धर्मान्तरण, साम्प्रदायिकता, विस्थापन, प्रदूषण, बेरोजगारी, अवैध संबंध, शोषण आदि समस्याएँ उभरने लगी है।

8.1 आदिवासी समाज की समस्याएँ –

आदिवासी समाज की समस्याएँ निम्नलिखित रूप में स्पष्ट है –

8.1.1 ऋणग्रस्त की समस्या –

आदिवासियों में ऋणग्रस्तता की समस्या अधिक पायी जाती है। यह जितना कमाते हैं वह सभी खर्च करते हैं। भविष्य के प्रति इनका कोई नियोजन नहीं होता। संकट के समय ये साहूकारों, ठेकेदारों से ऋण लेते हैं। सरकारी योजनाओं की जानकारी आदिवासियों तक नहीं पहुँच पाती। साहूकारों से उन्हें जल्दी ऋण मिल जाता है। जिसके बदले इन्हें साहूकारों को ब्याज ज्यादा देना पड़ता है। वे ऋण के बोझ में डूबते चले जाते हैं। समकालीन हिंदी साहित्य में ऋणग्रस्त की समस्या का चित्रण अधिक मात्रा में दिखाई देता है।

8.1.2 वन पर आधारित जीविकोपार्जन की समस्या –

आदिवासियो की अर्थव्यवस्था का प्रथम जीवित का प्रमुख साधन वन है। आज वनों की कटाई के कारण वन का क्षेत्र कम होता जा रहा है। वन से लाख तेंदू पत्ता, बहेरा आदि सारी चीजें इनकी जीविका के प्रमुख साधन है। आदिवासी लोग वनोपन चीजे संग्रहीत कर बाजार में विक्री के लिए ले जाते हैं उनके अज्ञानता के कारण उनका सही मूल्य प्राप्त नहीं होता है। साहूकारों, ठेकेदारों ने वन्य प्राणी एवं वन्य प्राणी संरक्षण नीति के अंतर्गत अधिकांश क्षेत्रों को आरक्षित घोषित कर वहाँ शिकार करने की मना कर दी है। वन कटाई के कारण वन्य प्राणी लुप्त होते जा रहे हैं।

जंगल से जनजातियों को बेदखल किया जा रहा है। जंगल के अधिकारी इस कानून की आड़ में विविध प्रकार से आदिवासियों का शोषण करने लगे। फलस्वरूप बिरहोर, परदिया, कोरबा, बिरजिया, सौदिया पहाडिया, असुर, खड़िया आदि जनजातियों को जिनका अधिक तर निवास जंगल था, वे सभी बाहर गाँव में रहने लगे।

8.1.3 अंधविश्वास की समस्या –

आदिवासी जनजातियाँ धार्मिक, अज्ञानी, भोली – भाली होने के कारण अंधविश्वास निर्माण हुआ। आदिवासी समाज वैज्ञानिक प्रगति से दूर, मंत्र – तंत्र, जादू – टोना, बलि, ओझा की मदद लेता है। गाँव के लोग अंधविश्वासी है। आदिवासियों की लाभ उठाने वाले धार्मिक व्यक्ति, नेता है। विवेकीराय के

अनुसार – ''गाँवों के लोगों के अंधविश्वास से काटकर यदि पृथक कर दिया तो गाँव नहीं रह जाता है।''[1]

राजेंद्र अवस्थी कृत 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोंड आदिवासी द्वारा देवता के प्रसन्न कराने के लिए ''सूअर की बलि चढ़ाना, भूत – प्रेत का खण्डहर में या पेड़ो पर रहना, पेड़ के नीचे दीप जलाने से संतान की प्राप्ति होना।''[2] शानी कृत 'शालवानों का दीप' उपन्यास में – ''शरीर गोंदने से अच्छा प्रेमी मिलना, अच्छा फसल के लिए बलि चढ़ाना, बीमारी हटाने के लिए माता बिदाई का आयोजन करना।''[3]

'जंगल के आसपास' में पवित्रता के लिए स्त्री की अग्नि परीक्षा लेना, 'साँप और सीढ़ी' उपन्यास में संकट न आए इसलिए दरवाजे पर जाली बाँधना, 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में आग लगाने संतान होगा, 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में हिरन का माँस खाने से हैजा का बढ़ना आदि अंधश्रद्धा का चित्रण हुआ है। अज्ञान के कारण आदिवासियों में अंधविश्वास बढ़ रहे हैं।

8.1.4 जातीय भेदाभेद –

आज देश में जातीय भेदा – भेद है। जाति, धर्म का संबंध ईश्वरीय सत्ता से जोड़ने का प्रयास रहा है। 'जंगल के फूल', 'शैलूष', 'सूरज किरण की छाँव' आदि उपन्यासों में जातीय भेदाभेद की समस्या है। 'शैलूष' उपन्यास में ब्राह्मण रेवती और राजपूत सुधाकर का विवाह न होना, रेवती को कोड़ो की सजा देना। 'जंगल के आसपास' में बंगाली सुचित्रा और पहाड़ी युवक नाथूराम का विवाह होना। 'वनवासी' में नागा बड़ोज – सवर्ण हिंदू के विवाह का विरोध होने पर दोनों का ईसाई बनना। 'धार' उपन्यास में संथाल मैना द्वारा आदिवासी को पति मानने से जात पंचायत द्वारा उसे अपराधी मानना। 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोंड़ झिरिया का पंजाबी युवक से विवाह न होना इसका प्रणाम है। गोंड का कथन –''पिरेम की लगाम टूट गई है। पर जात से ब्याह करने चली थी जब रोका तब गाँव के लिए मुसीबत बनी।''[4]

8.1.5 पहचान की समस्या –

आदिवासियों के लिए सबसे बडा खतरा 'पहचान के संकट' है। रमणिका गुप्ता लिखती है –''आज अगर सबसे बड़ा खतरा आदिवासी जमात को

किसी से है तो वह है उसकी पहचान मिटाने का। 21 वीं सदी में उसकी पहचान मिटाने की साजिश योजनाबद्ध तरीके से रची जा रही है। किसी भी जमात, जाति, नस्ल या कबीले अथवा देश को मिटाना हो तो उसकी पहचान मिटाने का काम सबसे पहले शुरू किया जाता है और भारत में यह काम हिंदुत्ववादियों ने शुरू कर दिया।''[5] आदिवासी की पहचान और नाम छीनकर उसे 'वनवासी' घोषित किया जा रहा है। वह यह बात भूल जाए कि वह इस देश का मूल निवासी या आदिवासी है। वर्तमान संकटों में आदिवासियों के सामने सबसे बड़ा संकट अपनी अस्मिता, अपनी पहचान का संकट है।

8.1.6 धर्मान्तरण की समस्या –

''धर्म मनुष्य की आंतरिक चेतना के विकास, नैतिक सदाचार तथा मानवीय प्रेम, सहयोग एवं सहानुभूति का मार्ग है।''[6] कहना सही है कि शोषण का आयाम धर्म बना है। धर्म में आडंबर, वाममार्ग, पापाचार का बढ़ता प्रभाव हानिकारक रहा है। डॉ.रमणिका गुप्ता का विचार है –''ईसाईयों ने आदिवासियों को मनुष्य का दर्जा देकर पढ़ना – लिखना सिखाया।''[7] आदिवासी धर्मांतरित आदिवासी मूल ईसाईयों में सांस्कृतिक समस्या का बन गए। ईसाईयों ने नौकरी, आवास, संपत्ति देकर आदिवासियों को धर्मान्तरण के प्रेरित किया। मुसलमान, बौध्द, आदिवासी, दलित ईसाई बनने से मूल संस्कृति को खो बैठे हैं। मिशनरियों ने सेवा, शिक्षा का आधार लेकर अपनी कूटनीति अपनाई। आज ईसाईकरण, धर्मान्तरण, साम्प्रदायिक, सामाजिक समस्या है। 'शैलूष' उपन्यास में एक ही नट परिवार के सदस्यों का ईसाई और मुसलमान बनना, सूरज किरण की छाँव में बंजारी – बैंजो को धन देकर विलियम द्वारा ईसाई बनाना। 'साँप और सीढ़ी' में कसूरी गाँव का ईसाई हो जाना। धर्मान्तरण आदिवासियों के लिए एक व्यापक समस्या है।

8.1.7 विस्थापन की समस्या –

भारत सरकार ने अविकसित, बिजली, बाँध, कारखानों का निर्माण किया। हजारों गाँवों, लाखो – करोडों, आदिवासियों का विस्थापन हुआ। विस्थापित आदिवासियों ने नगरों या महानगरों का सहारा लिया, परिणामतः झुग्गी झोपड़ियों का निर्माण हुआ। रमणिका गुप्ता का विचार है – ''90 प्रतिशत

कोयाला, 80 प्रतिशत खनिज, 3000 विद्युत बाँध आदिवासी क्षेत्रों में होने से आदिवासी का विस्थापन हो रहा है।''[8] सुरेशचंद्र के 'वनतरी' संजीव की 'धार' उपन्यास में आदिवासियों को कोयला खदान में हुआ विस्थापन चित्रित किया है। महाश्वेता के 'भूख' में बिहार के ओरांव, भुईया आदिम जनजाति खेड़ा बाँध परियोजना का विरोध करती है। तीस आदिवासी गाँवों को मृत्युदण्ड दिया गया। 'साँप और सीढ़ी' में उड़िसा के कस्तूरी गाँव में जपानी सरकार की मदद से सोनपुर में ताँबे का खदान शुरू होता है। जंगल न रहने से रोजगार का साधन नहीं रहा, जंगल निवासी विस्थापित बने। सरकार ने योजनाएँ शुरू की मगर पुर्नवास की जिम्मेदारी छोड़ दी। प्रभाकर मांडे के अनुसार –''रेल, बिजली, खानखदान के निर्माण तथा विकास के नाम पर आदिवासियों का विस्थापन हुआ, पुनर्वास होने से अलगाववादी ताकतें, स्वतंत्र राज्य की माँग बढ़ने ली। 1951 से 1990 तक लगभग 185 लाख आदिवासियों का विस्थापन हुआ, उनमें से 30 प्रतिशत आदिवासियों का पुनर्वास हुआ, बचे लोगों को रोटी – रोजी है न मकान।''[9] कहना सही है कि विकास योजना से आदिवासी लाभान्वित नहीं हुए, यह आदिवासियों की सबसे बड़ी समस्या है।

8.1.8 आवास की समस्या –

विभिन्न आर्थिक व्यवस्थाओं तथा अलग – अलग जलवायु के साथ – साथ आवसों की बनावट भी एक समस्या है। बहुत – सी जनजातियाँ अच्छे मकानों में रहने को एक गर्व का विषय मानती है। दूसरी ओर कुछ छोटी जनजातियाँ है, जो आवासों के महत्व पर ध्यान नहीं देती। ये लोग छोटी – मोटी झोपड़ियों में रहते हैं, जो सदैव गंदगी से घिरी रहती है, जबकि बिरहोर जैसी अन्य जनजातियाँ पत्तों के घरों में रहती है। मैदानों में रहनेवाली जनजातियाँ सड़क के दोनों ओर तथा नालों के किनारे अपना स्थायी आवास बनाकर जीवन निर्वाह करती है।

8.1.9 अस्थायी खेती –

भारतीय जनजातियों में अस्थायी खेती का प्रचलन काफी पुरानी है। अस्थायी खेती का अर्थ है कुछ समय तक एक भूमि पर खेती करना तथा फिर उसे खाली छोड़ देना जंगली ढलानों की सफाई, गिरे हुए पेड़ो तथा पहाड़ियों

को जलाना तथा फिर राख से ढकी भूमि पर बीज को छितराने जैसे कार्य होते हैं। खेती प्रकृति पर निर्भर होता है। अस्थायी खेती की शुरूआत आठ हजार से दस हजार वर्ष पहले अर्थात् नवपाषाण काल से हुई। विस्तृत भूमि उपलब्ध थी जिन पर अनाज, बाजारा, जौ तथा दाल के बीज फैला दिये जाते थे। वर्षाऋतु के बाद उपज काट ली जाती थी। दो या तीन वर्षों के बाद जब उस भूमि पर उपज कम हो जाती थी तब भूमि के दूसरे टुकड़े पर यही कार्य किए जाते थे। इस प्रकार अस्थायी कृषि का चलन प्रारंभ हुआ।

8.1.10 शोषण की समस्या –

नेता लोग अधिकार प्राप्ति के कारण आम आदमी का शोषण कर रहे हैं। अन्याय, अत्याचार, चुपचाप सहनेवाला आदिवासी, दलित, नारी का शोषित रूप इसका प्रमाण है। भारतीय समाज में वर्ण और वर्ग व्यवस्था रही है। आदिवासियों की न जमीन रही, न जंगल यही आज की दर्दभरी शोषण की कहानी है।

आदिवासी जंगल, जमीन पर अधिकार मानते हैं। जमीन हड़पना, बेगार लेना, फसल लूटना जैसी हरकतें जमींदार करते हैं। 'शैलूष' उपन्यास में नटों की जमींने हड़पना, पुलिस को जमींदार द्वारा रिश्वत देवकर नटों की पिटाई होना। 'धार' उपन्यास में आदिवासियों की जमीन पर तेजाब का कारखाना शुरू करना। 'वनतरी' उपन्यास में ठाकुर परमजित सिंह द्वरा गुण्डे पालना, आदिवासी नारी को लूटना, षड्यंत्र बनाकर जमीन हड़पना आदि विभिन्न रूपों में आदिवासियों का जमींदारों द्वारा शोषण होता है। आदिवासियों के शारीरिक शोषण की मात्रा अधिक है। आदिवासी अंधश्रध्दा होने के कारण ओझा, पंडित, पाप – पुण्य, स्वर्ग – नरक की बाते करके शोषण करते हैं।

8.1.11 आदिवासी नारी की समस्या –

संपत्ति के बल पर जमींदार, ठाकुर उनकी संतान आदिवासी नारी का शारीरिक, मानसिक, आर्थिक शोषण करते हैं। जंगल या खेती में काम करनेवाली, अकेली नारी, युवा नारी की समस्या है। कत्ल करना, पिटाई करना, जेल भेजना आदि आयामों में आदिवासी नारी का शोषण हो रहा है। 'कब तक पुकारूँ' की धूपो, प्यारी, कजरी, 'जंगल के फूल' की झिरिया, सुंदरी, 'जंगल के

आसपास' की श्यामा, गुमा, 'शैलूष' की रेवती, सावित्री, 'वनवासी' की नागा युवती बिंदू, 'जंगल के दावेदार' की मुंडा नारियाँ आदि इस के प्रमाण है। पिता, पति, सास, ससुर, प्रेमी, ननद आदि जैसे परिवार वालों आदिवासी नारी का शोषण होता है। 'कब तक पुकारू' की प्यारी, धूपो, 'जंगल के फूल' की झिरिया, जलिया, 'शैलूष' की सावित्री आदि नारियों का शोषण हो रहा है। दहेज, अग्निपरीक्षा, बाल विवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह, विजातीय विवाह आदि कई रूढ़ि – प्रथा से आदिवासी नारी शोषित है।

अज्ञान, अर्थाभाव, कमजोर मानसिकता, पुरूष प्रधान संस्कृति आदि के कारण आदिवासी नारी का शोषण होता है। जमींदार, ठाकुर, परिवार, समाज, धार्मिक व्यक्ति, सरकारी अफसर, राजनीतिक नेता आदि द्वारा आदिवासी नारी का शोषण होता है।

स्वास्थ्य सुविधा का अभाव, आत्महत्या की समस्या, रखैल – वेश्या समस्या, अवैध यौन संबंध की समस्या आदि समस्याओं से पीड़ित है आदिवासी नारी।

8.1.12 अशिक्षा की समस्या –

आदिवासी अशिक्षा की जड़ वहाँ का अविकसित अंचल, रोजी – रोटी की समस्या, शिक्षा की अपेक्षा जीवित की चिंता, शैक्षिक असुविधा, रूचि का अभाव आदि है। आदिवासियों की अशिक्षा का लाभ ईसाई मिशनरियों ने उठाया है। उन्होंने शिक्षा प्रसार के साथ धर्मप्रचार किया। आजदी के पश्चात् आदिवासी अंचलों में नियुक्त अध्यापक सेवा की अपेक्षा अपराधी वृत्ति से कार्य करता है।

जनजातियों द्वारा शिक्षा की ओर कम ध्यान देने के आर्थिक कारण भी है। अधिकत्तर जनजातीय परिवार इतने निर्धन है कि वे लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज सकते हैं। अधिकतर जनजातियों को खाने के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन तक नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में ये लोग शिक्षा की बात सोच भी नहीं सकते।

'शैलूष' उपन्यास में विंध्याचल में नटो के लिए शिक्षा व्यवस्था का न होना, ब्राह्मण तक शिक्षा रहना आदि का चित्रण हुआ है। रांगेय राघव के 'कब तक पुकारूँ' का सुखराम अज्ञान के संदर्भ में कहता है, 'जब तक करनट शिक्षित

नहीं होते तब तक वे कुत्ते की मौत मरते रहेंगे।

8.1.13 स्वास्थ्य की समस्या –

जनजातियाँ बहुत – सी बीमारियों से ग्रस्त रहती है, परंतु उनमें सबसे अधिक मात्रा में जल संक्रामक रोग पाये जाते हैं, जिनसे बहुत लोगों की मृत्यु हो जाती है। पीने के पानी की उपलब्धता में कमी इन रोगों का मुख्य कारण है। जिन स्थानों पर प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध है वहाँ पर भी जल गंदा व दूषित होता है। अधिकतर आदिवासी लोग पेट, आँत तथा चर्मरोग के शिकार हो जाते हैं। कालरा, पेचिश, अतिसार आदि बीमारियाँ इसी दूषित जल के प्रयोग के कारण हो जाती है। खनिजों तथा अन्य तत्त्वों की कमी भी कई बीमारियों का कारण है। पोषक तत्त्वों की कमी के कारण बहुत – सी जनजातियों में क्षय रोग का आधिक्य है। अधिकतर जनजाति के लोगों के शरीर में सभी प्रकार के प्रतिरक्षक का विकास नहीं हुआ है। ये लोग आसानी से किसीं भी नई बीमारी का शिकार हो जाते हैं।

8.1.14 प्रवसन की समस्या –

जनजातियों के संदर्भ में यह समस्या बहुत पुरानी नहीं है। जनजातीय प्रवसन की समस्या को दो पहलुओं द्वारा समझा जा सकता है। पहली श्रेणी में सामाजिक – आर्थिक शोषण, भुखमरी, बीमारी, बाढ़ व सूखे जैसे प्राकृतिक विपदाएँ, बेरोजगारी आदि को शामिल किया जा सकता है। दूसरी श्रेणी में – शहरों में रोजगार के बेहतर अवसर व अधिक मजदूरी जैसे घटक शामिल किए जा सकते हैं। इन दोनों कारणों से बहुत – सी जनजाजियाँ प्रवासी बन जाती है।

झारखण्ड के उराँव, सन्याल, हो तथा मुण्डा जैसे जनजातियाँ उत्तरी बंगाल व असम के चाय बगानों में काम के लिए जाती रही हैं, लेकिन हाल के वर्षों में झारखण्ड से जनजातियों का प्रवसन हरयिाणा व पंजाब की ओर भी प्रारंभ हो चुका है। यहाँ जनजातियाँ कृषि मजदूरों अथवा घरेलू नौकरों के रूप में करते हुए जीवन – यापन करती है। असम व बंगाल के चाय बागानों में मालिकों अथवा पूँजीपतियों द्वारा आदिवासियों का शोषण किया जाता है। उन्हें सरकारी दर पर मजदूरी नही ंके बराबर मिलती है। शिक्षा के अभाव के कारण

भी वे स्वयं के विरूद्ध किए जा रहे शोषण के प्रति आवाज नहीं उठा पाते। झारखंड जैसे बहुत जनजातीय राज्य में इनका प्रवसन एक गंभीर समस्या है। झारखंड से संबंधित आदिवासियों के प्रवसन की समस्या की गंभीरता इस तथ्य में है कि देश के विभिन्न राज्यों में जहाँ वे कम मजदूरी में काम कर रहे हैं, उनका शोषण किया जाता है।

8.1.15 खानखदान की समस्या –

आदिवासी समाज वनों, जंगलों, पहाड़ियों की गोद में रहनेवाला समाज है। कोयला खदान से पहाड़ नष्ट हो रहे हैं। जंगल, पहाड़, जल, जड़ी – बूटी रोजी – रोटी का आधार है।

आज पूँजीवादी, कारखानदार पहाड़ों में बस रहे हैं। बड़े – बड़े मिशन पहाड़ को ध्वस करने जुटे हैं। पहाड़ की गोद में छिपी खदान, लोह – मैगनाईट, ताँबा की प्राप्ति के लिए खुदाई शुरू है। खानखदान से धुआँ फैल रहा है, पेड़ नहीं बचे, कच्ची सड़क से रेती हवा में उड़ रही है। अनेक राज्यों में कोयला, बाक्साईट, हीरा, चूना, पत्थर, एल्युमिनियम संपत्ति है। औद्योगीकरण होने से मजदूरी मिली परंतु संस्कृति, स्वास्थ्य, नारी रक्षा समस्या बनी है। संजीव कृत 'धार' उपन्यास में झारखंड, संथाल, छोटा नागपुर के संथालों का कोयला खदान से होनेवाला विस्थापन, शोषण का चित्रण है। शानी कृत 'साँप और सीढ़ी' उपन्यास में सोनपुर की पहाड़ियों में तांबे की खदान होना, खदान की धमाके से पशु, पंछी, धुँआ, रेत से कई कई बीमारियों का बढ़ना आदि समस्याएँ निर्माण हुई है।

इसके अतिरिक्त पुलिस तथा अफसरों द्वारा होनेवाला शोषण, अंग्रेजों द्वारा होनेवाला शोषण, रखैल – वेश्या समस्या, आत्महत्या की समस्या, सड़क की समस्या, अस्पतालों में महिला चिकित्सकों का अभाव, बड़ी रेल लाइन का अभाव, जादू – टोना आदि आदिवासी समाज की समस्याएँ हैं।

8.2 आदिवासी समाज की समस्याओं का समाधान –

आदिवासी विकास में अधिक महत्वपूर्ण बनाने तथा किए गए कार्यों की सीमाओं को दूर करने संबंधी सुझाव जो अध्ययन से उभरकर आए हैं वे निम्नलिखित है –

1. आदिवासी एकता के लिए एक संपर्क भाषा का होना जरूरी है। आदिवासियों के लिए प्राथमिक शिक्षा का माध्यम उनकी मातृभाषा होनी चाहिए।
2. शिक्षा का प्रचार – प्रसार, अधिकारों के प्रति जागरूकता, आदिवासी विकास कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता आदि महत्वपूर्ण उपाय साबित हो सकता है।
3. ग्रामों के निकट तथा स्थानीय लोगों की स्वीकृति से स्कूल खोले जाने की स्थिति में ही शिक्षा योजना सफल हो सकती है। भ्रष्टाचार, वित्तीय कठिनाइयों, प्रबंध में ढीलेपन के कारण अधिकतर भवन स्कूल बनाये जाने योग्य नहीं होते। अतः सरकार को इन विषयों पर ध्यान देते हुए जनजातीय समाज के शैक्षिक विकास के उपाय करने चाहिए।
4. जनजातियों के विश्वासों, परंपराओं तथा रीति – रिवाजों पर ध्यान दिये बगैर कोई भी आवास योजना के बनने से पूर्व जनजातियों से उनकी आवश्यकताओं के संबंध में इन जनजातीय लोगों के विचारों तथा विश्वासों को ध्यान में रखकर किया जाए। इसके साथ – साथ स्थान का चयन तथा आवासों की संरचना भी इनके रीति – रिवाजों के अनुसार ही होनी चाहिए।
5. जनजातीय कृषकों को आधुनिक तकनीकों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे कि कृषि उत्पादकता में वृद्धि हो। अच्छे व प्रदर्शनी हेतु खेती की स्थापना करना, ऋण सुविधा उपलब्ध कराना आदि।
6. आदिवासियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उचित बाजार मूल्य मिलना आवश्यक है।
7. आदिवासियों को स्वच्छ पेय जल, बिजली, पानी, स्वच्छ भोजन की सुविधा प्रदान की जाये।
8. आदिवासियों का व्यापारिक शोषण पूर्णतया बंद किया जाये।
9. आदिवासियों से संबंधित उनकी आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करने की नितांत आवश्यकता है।
10. जनजातीय सलाहकार समिति की सलाह से सरकार को नियम बनाने चाहिए, जो प्रत्येक क्षेत्र की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए उपायुक्त या जिलाधिकारी की अनुमति पर नियंत्रण रखें।

11. आदिवासी समाज में आत्मनिर्भरता लाने के लिए स्वरोजगार स्थापित करने के प्रयास करने चाहिए।
12. स्थायी, मजबूत, गहरे एवं बड़े तालाब बनाने चाहिए। वर्षभर पानी की आपूर्ति होगी, सिंचाई होगी, लोगों को रोजगार मिलेगा और क्षेत्र का विकास स्थायी प्रकृति का होगा।
13. आदिवासी समाज में सुधार की चाह रखनेवाले लोगों के साथ मिलकर एवं सामाजिक कुरीतियों को बढ़ावा देनेवाले व्यक्तियों की पहचान कर उन्हें विश्वास में लेना चाहिए ताकि सुधार के रास्ते मिल – जुलकर तय किए जा सकें, साथ ही नुक्कड़ नाटकों, ग्राम उत्सव तथा सम्मेलनों में व्यापक तौर पर इन कुरीतियों के खिलाफ महौल बनाना चाहिए, जिससे लोग स्वतः सुधार के पक्ष में मन बना सके।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त विवेचन विश्लेषण के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि शोषण, विस्थापन, गरीबी, अशिक्षा के दायरे में फसे आदिवासी अंधविश्वासों में जकड़े हुए हैं। अधिकतर आदिवासी कोयला खदानों में मजदूरी करनेवाले है जो पूँजीपति, ठेकेदार, जमींदार, महाजन तथा पुलिस के अंतहीन शोषण में जकड़े हुए हैं। स्वाधीनता के पश्चात् भी अज्ञान, अशिक्षा के कारण नगर महानगरों के आकर्षण कारण आदिवासियों का शारीरिक, मानसिक, आर्थिक शोषण भी हुआ है। वर्तमान समय में आदिवासी समाज भी राजनीति के दुश्चक्र में फंसा नजर आता है। औद्योगिक विकास से उत्पन्न आदिवासी समाज की समस्याएँ, आदिवासी स्त्री पुरूषों में फैले अंधविश्वास, सामाजिक रूढ़ियाँ, अनैतिक प्रेम संबंध आदि का चित्रण हुआ है। आतंक, अन्याय, शोषण, पिछड़ापन, अभाव आदि पहलुओं का अत्यंत बारीकी एवं यथार्थ के धरातल पर चित्रण किया है।

– संदर्भ सूची –

1. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य और ग्राम जीवन – विवेकीराय, पृ.271
2. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ.109
3. शालवानों की द्वीप – शानी, पृ.117
4. जंगल के फूल – राजेंद्र अवस्थी, पृ.49
5. युद्धरत आम आदमी – सं.रमणिका गुप्ता, अप्रैल, 2015, पृ.75
6. आधुनिक भारत के निर्माता : पंडित नेहरू, रामलाल विवेक, पृ.139
7. आदिवासी कौन? – सं.रमणिका गुप्ता, पृ.180
8. हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में आदिवासी जनजीवन –डॉ.भरत सगरे, पृ.108
9. भारतीय आदिवासी विकासाच्या समस्या – प्रभावर मांडे, पृ.172

उपसंहार

आदिवासी विश्व का सबसे बड़ा जनतांत्रिक समूह है। आदिवासी समाज में उनकी अपनी भाषाओं, संस्कृति और लोकसाहित्य, मिथक तथा सृष्टि – कथाओं का एक उद्‌भुत एवं विशाल भण्डार है। आदिवासी एक सामान्य प्रकार का समूह है, जिनके सदस्य एक सामान्य बोली का प्रयोग करते हैं और युद्‌ध जैसे सामान्य उद्‌देश्यों के लिए या शत्रु का सामना करने के लिए साथ लेकर काम करते हैं। इनकी अपनी एक विशिष्ट भाषा, संस्कृति, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था और परंपराएँ होती है।

आदिवासी उसे कहते हैं, जो पहले निवासी हो, विशिष्ट बोली, संस्कृति, अविकसित, मूलनिवासी, आदिवासी है। जंगल और जमीन उनकी संपत्ति है। अज्ञान, अंधश्रद्‌धा, प्रगति से दूर आदिवासी है। आदिवासी समाज छोटी बस्ती में, झोपड़ी में रहनेवाला अज्ञानी, अर्धनग्न, शोषित, जंगलों पर निर्भर, अप्रगत व्यवसाय करनेवाला है। जंगल का राजा आदिवासी है। प्रकृति का गोद में पलनेवाला वनपुत्र है। आज सरकारी विकास योजना के कारण जंगल कटाई, खानदान, तालाब निर्माण के कारण आदिवासियों को जंगल से हटाया जा रहा है। आजादी के आंदोलन में देश के विभिन्न अंचलों में सशस्त्र आंदोलन आदिवासिों ने किया है।

आदिवासी समाज भारतीय समाज जीवन का अंग है, जो पहाड़ी घाटी प्रदेशों में, नगरों से दूर अपनी समाज व्यवस्था से चिपका हुआ जी रहा है। आदिवासी समाज की सामूहिकता प्रधान प्रवृत्ति है। लोकगीत, लोककथा आदिवासी मन का दस्तावेज है। आदिवासियों का अज्ञान के कारण, जमींदार, धार्मिक व्यक्ति, पुलिस, सरकारी अफसरों द्‌वारा शोषण हो रहा है। कोयला खदान, औद्‌योगीकरण, जंगल कटाई, बाँध निर्माण के कारण विस्थपितों के पुनर्वास की ओर ध्यान देने से अलग राज्य, नक्सलवादी आंदोलन जैसी नई सूमस्याएँ बन रही हैं। आदिवासी मूलतः वनों में रहनेवाले एवं वनों पर ही अपनी उपजीविका चलाते हैं। आदिवासियों में अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता

की अधिनता दिखाई देती है। आदिवासी हमेशा नशा करते हुए दिखाई देते हैं। जमींदार, पुलिस, समाज एवं शासन के द्वारा इनका शोषण होता है।

भारत में संथाल, थार, नागा, करनट, नट, बंजारा, चेंचु, बँगा, खारिया, भुइया, गोंड, हो, भील, भोकसा आदि प्रमुख आदिवासी जनजातियाँ है।

आदिवासी समाज अज्ञानी, अंधश्रद्धा, शोषित, प्रगत समाज से दूर, प्रकृति की गोद में पलने वाला, भारतमाता का सपूत है। जन संस्कृति आम आदमी की जिंदगी से जुड़ा संस्कार होता है। धार्मिक – सांस्कृतिक विरासत भारतीयता की आत्मा है। यह विश्वबंधुत्व, विश्वसंस्कृति का रक्षक है। यहाँ रहनेवाली हर जाति अपनी – अपनी संस्कृति को सुरक्षा प्रदान कर रही है। धार्मिक ग्रंथ लोकसंस्कृति के पथदर्शक रहे हैं।

आदिवासी समाज जाति – प्रथा पर श्रद्धा रखता है। आदिवासियों की समाज व्यवस्था वनों, जंगलों पर निर्भर है। देवी – देवता, हिंदू देवता के समान तथा जंगल से संबंधित है। बलि प्रथा का व्यापक प्रभाव है। अंचल के अनुसार उत्सव – पर्व रहे हैं। पुनर्जन्म पर विश्वास होने का प्रमाण मृतक संस्कार है। जंगल पुत्र, वनवासी, जंगल के दावेदार आदिवासी भारत का सपूत है। प्राचीन काल से आज तक अंधविश्वास, देवी – देवता, बलिप्रथा, व्यवसाय, घोटुल, जात पंचायत का प्रभाव है। लोकगीत, लोककथा, उत्सव – पर्व, रूढ़ि – परंपरा, संस्कार में भी धीरे – धीरे परिवर्तन हो रहा है। रूढ़ि – परंपरा से शोषित आदिवासी समाज है। गुदना आदिवासी अविकसित होकर भी अपनी संस्कृति की रक्षा करते हैं। भारतीय संस्कृति मूल स्त्रोत आदिवासी संस्कृति में दिखाई देता है। आदिवासी जनसंस्कृति की रक्षा करना, सामाजिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।

आदिवासी शिकार करके या जड़ी बूटियाँ बेचकर अपना जीवनयापन करते हैं। जनजातियों के उत्पादन के साधन लकड़ी ढोना, जड़ी – बूटी, फल – फूल एकत्रित करना, शिकार करना एवं खेती करना आदि है। आर्थिक विषमता, गरीबी, बीमारी, बेकारी आदि के कारण पिछड़ी जनजातियों की दशा आनंददायक नहीं है। आदिवासियों का आर्थिक जीवन उनकी भौगोलिक परिस्थितियों से निर्धारित होता है। शराब बनाकर बेचना, चोरी करना, जादूगरी

एवं नाच – गान इनके आर्थिक उपार्जन के माध्यम होते हैं। आदिवासी समाज जंगलों, वनों, पहाड़ियों की गोद में रहनेवाला समाज है। जंगल, पहाड़ उनकी संपत्ति, जड़ी – बूटी रोजी – रोटी का आधार वही देवता है। आज बिहार में कोयला खदान व्यवसाय होने के कारण आदिवासी लाभान्वित नहीं बल्कि ठेकेदार धनवान बने। आदिवासी समाज जंगलों, वनों, पहाड़ों की गोद में रहनेवाला समाज है। पूँजीवाद, कारखानदार पहाड़ो में बस रहे हैं। आदिवासी को मजदूरी मिली मगर वह भी शोषण का आयाम बनी।

आदिवासी जीवन की राजनीति जमींदार – पूँजीपातियों के हाथ का खिलौना है। पुलिस के बढ़ते हुए अत्याचार से भी पिछड़ी जनजातियों का जीवन भयभीत हुआ दिखाई देता है जिसका चित्रण 'अल्मा कबूतरी', 'जंगल के आस पास', 'वनतरी', 'पिंजरे के पन्ना' आदि उपन्यासों में दिखाई देता है। स्वाधीनता के बाद चुनाव वोट की घिनौनी राजनीति के गाँव में प्रवेश ने आदिवासी लोगों का शांति, सुरक्षा का जीवन अस्त – व्यस्त कर दिया है। रिश्वतखोरी, सत्ता – लोलुपता, साम्प्रदायिकता, कुटिलता, आतंक आदि का चित्रण हुआ है। सत्तालोलुप वर्ग अपनी आँखे बंद किए हुए अपने स्वार्थ में लिप्त है। 'साँप और सीढ़ी', 'काला जल', 'बाहरी आदमी', 'नदी और सीपियाँ' आदि उपन्यासों में होनेवाल नैतिक मूल्यों के ह्रास की तरफ ध्यान दिया गया है। आज आदिवासी समाज राजनीति के चक्रव्यूह में फँस गया।

आदिवासी समाज के व्यक्ति पूर्वजों एवं परंपरागत देवताओं की पूजा अवश्य करते हैं। पूजा प्रायः पशु – पक्षियों की बलि करके, मंत्रपाठ करके संपन्न की जाती है। आदिवासी अपनी जातीयता, संस्कृति, समाज व्यवस्था की रक्षा करना धर्म माना जाता है। अपने धार्मिक क्रिया धर्म के प्रति आदिवासी जीवन में गहरी आस्था होती है। विश्व के आदिवासियों के विश्वास, संस्कार और आदिमकालीन जनजातियों के अंधविश्वास पारम्परिक व्यवहार और विसंगत स्थितियों के बीच जनजातीय परिवेश की स्वाभाविकता का अपना एक विलक्षण आकर्षण है। आदिवासी जीवन में धर्म ढोंगी और स्वार्थी पंडित – पुरोहित, ओझा और पूँजीपति वर्ग के हाथ की कठपुतली बना पाया जाता है। आदिवासी धार्मिक जीवन में देवी – देवताओं के प्रति श्रद्धा भाव 'शैलूष', 'सोनामाटी', 'अल्मा

कबूतरी', 'जंगल के फूल', 'धार' आदि उपन्यासों में देखने को मिलता है। धार्मिक जीवन आज भी धार्मिक अंधविश्वास, रूढ़ियाँ, पाखंड, शोषण आदि का चित्रण हुआ है। अंधविश्वास का प्रभाव होने के कारण अनेक रूढ़ियाँ, परंपराएँ बनी है। देवी – देवता, हिंदू देवता के समान तथा जंगल से संबंधित है। बलिप्रथा का व्यापक प्रभाव है।

आदिवासियों की शोषण, अंधविश्वास, जातीयता, अज्ञान, परंपरागत समस्या तो विस्थापन, धर्मान्तरण, अवैध व्यवसाय आदि विकास योजना का परिणाम है। आदिवासी अंधश्रद्धा होने के कारण ओझा, पंडित, पाप – पुण्य, स्वर्ग – नरक बाते करके शोषण करते हैं।

शोध प्रबंध की मौलिकता

1. हिंदी में आदिवासी साहित्य की अवधारणा बन रही है। 'आदिवासी राजनीति, साहित्य और संस्कृति' की एक नई अवधारणा के निर्माण का यह दौर है। आज गैर आदिवासियों के साथ – साथ आदिवासी लेखकों की संख्या बढ़ रही है।
2. आज आदिवासियों में चेतना जगी है। वह नई – नई विचारधाराओं और क्रांतियों से परिचित है। अपनी संस्कृति, भाषा और अपनी अपनी उदात्त जीवन शैली की अभिव्यक्ति से हिंदी को समृद्ध कर रहा है।
3. आदिवासी समाज शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद कर रहा है। समस्याओं से जूझने के लिए वह संघर्षरत है।
4. सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में होनेवाला परिवर्तन, पर्यटकों और ईसाईयों का बढ़ता संघर्ष, विकास योजना, खानदान जैसे उद्योगों का निर्माण, शिक्षा प्रसाद के कारण आदिवासी जागरूक हो रहे हैं।
5. सच्चा भारत का सपूत, वनवासी, भोले – भाले अज्ञानी आदिवासी अब नए विचारों से प्रभावित होकर नई जिंदगी जीने का प्रयास कर रहे हैं।
6. उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण, ग्लोबलाइजेशन आदि के कारण मनुष्य दिन – प्रतिदिन अपने सत्व से वंचित होता जा रहा है। इस गतिशील प्रवाह में एक ऐसा भी समाज है, जो अपने सत्व को और अस्मिता को स्थाई

रखना चाहता है। आदिवासी समाज अपनी आस्था, कलारूचि, रूढ़ि – परंपरा, पर्व – त्यौहार, गीत – नृत्य, नियम आदि कला, रस्म – रिवाज, मान्यता, देवी – देवता, पूजा – विधि, विवाह – प्रथा अपनी भाषा – बोली और तमाम अतीतमुखी सांस्कृतिक बुनावटों से अलंकृत है। प्रस्तुत शोध – प्रबंध में आदिवासी समाज – जीवन का परिवेश पर विमर्श रेखांकित किया गया है।

7. सरकारी विकास योजना, विकासोन्मुखी विचारधारा के कारण आदिवासी विकासोन्मुखी बना है। आदिवासी समाज की समस्या पर भी सोचा है। आज नई क्रांति हो रही है। आदिवासी जीवन पर सोचनेवाला आज परिवर्तित व्यवस्था पर विचार कर रहा है। राजनीतिक दल भी दलितों के साथ – साथ आदिवासी नेता को सत्ता में शामिल कर रहे हैं, मंत्री, मुख्यमंत्री, लोकसभा के अध्यक्ष आदि पदों पर आदिम नेता कार्य किया है और कार्यरत हैं। यह परिवर्तन आदिवासी जागृति की मिसाल है।
8. आदिवासी रचनाकार अपनी भाषा में साहित्य सृजन करके उसे समृद्ध कर रहे हैं तथा अन्य भाषाओं के साहित्य को अपनी भाषा में अनुवाद कर अपनी भाषा एवं साहित्य को विस्तृत एवं समृद्ध कर रहे हैं, साथ ही अपना साहित्य दूसरी भाषा में अनूदित कर, आदिवासी जीवन शैली, संस्कृति और कला – कौशल को अन्य भाषा – भाषी लोगों से परिचय कराने में समर्थ हो रहे हैं।

शोध प्रबंध की उपलब्धियाँ

1. आदिवासी लोग परंपराओं में अपनी – अपनी विशेषताएँ होती है। ये परंपरा सदियों पुरानी हैं – ये ही आदिवासी संस्कृति में निखार लाती है, आदिवासी संस्कृति में, कला, साहित्य, पोशाक, रंग, नृत्य, संगीत, व्यवहार आदि विविध पक्षों से जुड़ी हुई है, इन सभी का लोक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है, ये प्रभाव ही आदिवासी संस्कृति को रंगते गए और विभिन्न छाप छोड़ते गए, जिन्हें प्रामाणिक माना जाता रहा है। इस दृष्टि से आदिवासी लोक परंपराएँ जीवंत है।

2. देश के आदिवासी अपेक्षाकृत रूप से भले ही अलग – अलग रहे हैं, लेकिन ये भारतीय सभ्यता, इतिहास और हमारी चेतना में शामिल रहे हैं जब कि अन्य देशों में ऐसा नहीं है।
3. परंपरा से आदिवासी वनों एवं वन उपज पर आधारित हैं, इनकी वन प्रधान अर्थ – व्यवस्था में कृषि की भूमिका कम रही है, क्योंकि आदिवासी पूरा कृषक नहीं रहे, अभी कुछ वर्षों पूर्व ही इन्होंने कृषि को अपनाया है। इसमें किसी एक व्यवसाय का चलन नहीं। जैसे – जैसे कार्यों की विविधता आती गई ये उन्हीं को अपना कर अपना काम चाल लेते हैं। मकान निर्माण में ये मजदूर, कारीगर, सुझार, कुम्हार सभी की भूमिका निभाकर काम पूरा कर लेते हैं। इनका प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण एवं उपयोग भरपूर रहा है।
4. आदिवासियों की विकास यात्रा में योजनाकारों, शोधकर्ताओं, मार्गदर्शक संस्थाओं, कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने वाली संस्थाओं, विभागों के साथ ही समन्वय करनेवाले विभागों की अहम् भूमिका रही है।
5. आदिवासी समाज की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना नितांत भिन्न है। यह समुदााय अपने आप को महत्वूपर्ण मामलों में अलग – अलग एकाकी महसूस करने लगता है। इनकी अपनी मान्यताएँ एवं परंपराएँ हैं। इन परंपराओं की जड़े बहुत गहरी है। भारत की प्रमुख जनजातियों की सामाजिक, सांस्कृतिक संरचना की गहराई से पड़ताल करने पर यह स्पष्ट हो जाती है।
6. आदिवासी में अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता की अधिकता दिखाई देती है।
7. लोकगीत, नृत्यसंगीत, आहार, प्रकार, सांस्कृतिक मूल्य, आर्थिक जीवन संपत्ति के उत्तराधिकार, नामकरण, वैवाहिक निमय, पूजा विधि और ईश्वर संबंधी धारणा आदि में विविधता के साथ वैशिष्ट है।
8. भारतवर्ष में एक ओर नागर संस्कृति तो दूसरी ओर ग्राम्य संस्कृति दिखाई देती है, साथ ही वनों में रहनेवाली जनजातियों की भी अपनी विशिष्ट संस्कृति भी दिखाई देती है। हमें भारतीय साहित्य गहन अध्ययन से भारतीय संस्कृति, आचार – विचार, रहन – सहन, खान – पान आदि का पता चलता है।

9. सरकार द्वारा शिक्षा प्राप्ति, विचार मंथन कार्यक्रम शुरू करने के कारण आदिवासी में समाज प्रबोधन को गति मिली। समाज जागृत होने लगा। अन्याय, अत्याचार, शोषण के खिलाफ संघर्ष आंदोलन करते रहने से आदिवासी जनजीवन में परिवर्तन दिखने लगा। कोई सामाजिक – राजनीतिक नेता बने, कोई अध्यापक बने, यही उनके माध्यम से नई समाज व्यवस्था का निर्माण है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक अंगो द्वारा आदिवासी उन्नति की दौड़ शुरू हुई है।
10. आदिवासी समाज विशिष्ट भूप्रदेश में रहना, समूह बनान, अपनी बोली का ही प्रयोग करना, जाति पंचायत की रक्षा करना, वनों पर निर्भर रहना आदि उनकी विशेषताएँ हैं। महाराष्ट्र, आंध्र, झारखंड, बिहार जैसे आँचलों में नट, करनट, गोंड, भील, ऊराँव, कातकरी, कोल, वारली, संथाल, हो, बैनगा, चेंच, बंजारा, मिझो, नागा, गुर्जर, खासी, कोली, धोबी, जुआंग आदि अनेक आदिवासी जनजातियों की स्थिति एवं गति सुजलाम हो रही है।
11. आदिवासी लोग कभी किसी के सामने झूके नहीं। वे अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए जंगल और वन में रहकर कायम रखा है। इसलिए उनके पास बहुत बड़ा त्याग, तपश्चर्या, राष्ट्रभक्ति एवं निस्वार्थ देशसेवा आज भी उनके पास ओतप्रोत हुई है।
12. आदिवासियों की अपनी अलग पहचान है। प्रकृति प्रदत्तनदी, पहाड़, गुफा, खोह, जंगल, समतल मैदान तथा वृक्षों को परमेश्वर के निवास के रूप में मान्यता ही आदिवासी समुदाय की विशेष पहचान है।
13. आदिवासियों के गीतों और कथाओं के मूल में जल, जंगल और जमीन तथा प्रकृति ही रहे हैं। आदिवासी वाचक साहित्य की हजारों वर्षों की पुरानी परंपरा है।
14. प्रत्येक आदिम जनजाति का अपना विशेष तथा परंपरागत लोक – साहित्य विविधताओं से परिपूर्ण है। इनके लोकगीत परंपरा से गाए जानेवाले गीत हैं। प्रत्येक गीत के पीछे श्रद्धाल, आचारण पद्धति, सामाजिक संक्रमण, अंधविश्वास, रूढ़ि, परंपरा, संस्कृति में होनेवाले नवीन बदलाव, शहरीकरण,

स्त्री – पुरूष भेद, नातों – रिश्ते से संबंधित अनेक बाते दिखाई देती है। गायन और नृत्य आदिवासियों के जीवन के महत्वपूर्ण अंग है।

15. आदिवासी जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, शैक्षिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक आदि विभिन्न परिवेशों के परिप्रेक्ष्य में आदिवासी जीवन के विभिन्न परिदृश्य है। उनकी जीवन शैली, जीवन स्तर उनकी अवस्था तथा उनकी समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर आलोकित है।
16. आदिवासी नारी को अधिकार संपन्न बनानेवाली जनजाति है। धार्मिक व्यक्ति से पीड़ित, जमींदारों की भोगवस्तु, प्रथा से शापित, आदिवासी नारी आज संगठित होकर अस्मिता कीर रक्षा कर रही है। नारी मुक्तिदल, नारी संगठन का निर्माण होना इसका प्रमाण है।
17. आदिवासी समुदाय पेड़, प्रकृति, जंगलों के बीच ही स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करते हैं। किंतु वैश्वीकरण के दौर में आदिवासी समाज के सामने अपने अस्तित्व का संकट गहराता जा रहा है, उन्हें जल, जंगल, जमीन से काटने का प्रयास किया जा रहा है, किसी भी समाज को जबरन मूल स्थान, मूल भाषा तथा मूल पहचान से अलग किया जाता है तो उस समाज में असुरक्षा की भावना पनपती है, स्वयं के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए संघर्ष करता है और यही संघर्ष एक सीमा के बाद आंदोलन का रूप लेता है। इसी आंदोलन में वह अपने शोषण के प्रति विरोध दर्ज करता है।
18. हमारे देश में झारखंड, उड़ीसा, बंगाल, असम, राजस्थान, अरूणाचल प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल, गुजरात, केरल, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में अनेक जनजातियाँ निवास करती है। हमारे देश के विभिन्न राज्यों के जनजातीय इलाकों में प्रागैतिहासिक काल से आज तक इनके वंशज प्रकृति की गोद में खेल रहे हैं। गोंड, कोरकू , कोल, भील, कोरग, उरांव, सबरा आदि कुछ और समूह ने अपनी संस्कृति और साहित्य को सुरक्षित रखा है। वनवासियों का स्थान हमारे सांस्कृतिक धरोहर में बहुत ऊँचा है।

19. विकास के नाम पर विस्थापित कर उसे जंगलों से बाहर खदेड़ा जा रहा है। दरअसल आदिवासी जनता अपने भ्रम के बल पर सदैव आत्मनिर्भर और स्वावलंबी रही है। हिंदी के आदिवासी कवि इन संवेदनाओं को अपनी कविता में दर्ज करते हुए अपने नए इतिहास – लेखन में जुड़े हुए हैं।
20. इतिहास में आदिवासी को वांछित स्थान नहीं मिला है। इतिहास में उनका अपना स्थान है, उनका अपना परिचय है, उनकी अपनी संस्कृति है।

अनुसंधान की नई दिशाएँ –

समकालीन हिंदी साहित्य पर स्वतंत्र रूप से निम्नलिखित विषयों पर अनुसंधान किया जा सकता है –

1. समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी स्त्री जीवन
2. समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विस्थापन
3. आधुनिक हिंदी साहित्य में चित्रित आदिवासियों की समस्याएँ एवं समाधान
4. समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श
5. समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श .

साक्षात्कार – 1

'साहित्यकार के दिमाग में लेखन के अंकुर कभी मरते नहीं।'

– डॉ.अमरसिंह वधान

डॉ.अमरसिंह वधान के साथ डॉ.पंडीत बन्ने की बातचीत

———————————————————————————————

प्रसिध्द लेखक, प्रखर चिंतक, विवेकशील संपादक एवं संवेदनशील निबंधकार डॉ.अमरसिंह वधान देश की जानी – मानी शख्सियत हैं। उन्होंने भारतीय साहित्य, संस्कृति, कला, मनोविज्ञान, व्यवहार विज्ञान, अध्यात्म – दर्शन, लोक साहित्य, अनुवाद, पत्रकारिता आदि की श्रीवृध्दि, प्रसार और विकास में अपना अप्रतिम योगदान दिया है। आलोचना, निबंध, नारी मनोविज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, तुलनात्मक साहित्य एवं शोध तथा हिन्दीत्तर साहित्य और संस्कृति उनका विशेषतज्ञ क्षेत्र है। 'समकालीन हिंदी कहानी', 'चेतना के स्वर', 'अनुभूति और विचार', 'बीसवीं सदी की कालजयी रचनाएँ', 'साहित्य और उत्तर संस्कृति', 'हिन्दी गद्य की नवीन विधाएँ', 'आधुनिक हिन्दी साहित्य के नए विमर्श' आदि उनकी अत्यंत चर्चित कृतियाँ हैं। दलित साहित्य एवं आदिवासी साहित्य पर भी उन्होंने मार्के का काम किया है। तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, मराठी, गुजराती, पंजाबी एवं बांग्ला साहित्य और संस्कृति पर अपने अमूल्य ग्रंथों का प्रणयन करके उन्होंने इन भाषाओं तथा इनके रचनाकारों को एक राष्ट्रीय मंच प्रदान किया है। इस साहित्य व्यक्तित्व के साथ आदिवासी साहित्य पर विस्तार से अंतरंग बातचीत हुई, जिसके कुछ महत्वपूर्ण अंश निम्नानुसार हैं –

o इधर आदिवासी साहित्य एवं विमर्श पर काफी लिखा जा रहा है, चर्चाएँ भी हो रही हैं। आपका 'आदिवासी' से क्या अभिप्राय है?

⇨ देखिए, प्रकृति के अस्तित्व के साथ ही आदिवासी भी प्रकट हुआ है और वह प्रकृति की गोद में पला और बड़ा हुआ है। वन उसकी संजीवनी है। वैसे 'आदिवासी' शब्द से तात्पर्य है – वनवासी या जंगली आदिम। भारतीय संविधान में इन्हें अनुसूचित जन – जाति से संबोधित किया गया है। अपना समूचा जीवन बिना आवश्यक सुविधाओं के सुदूर क्षेत्रों में रहकर

अभावों में जीने वाला व्यक्ति ही आदिवासी है। प्रायः आदिवासी शब्द वा प्रयोग किसी क्षेत्र के मूल निवासियों के लिए किया जाता है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में दस्यु, विषय के आदि के रूप में जिन विभिन्न प्रजातीय समूहों का उल्लेख किया जाता है, उसके वंशज भारत में आदिवासी माने जाते हैं। आदिवासी समाज के लोग आमतौर पर जंगलों, पहाड़ों में रहते हैं। वे त्योहार – उत्सव एवं रीति – रिवाज परंपरा को कायम रखते हैं। अपनी पैतृक परंपराओं को भी संभालते हुए विशिष्ट प्रकार की जीवन – शैली को अपनाते हैं। आदिवासियों के लिए वन जीवन ही सर्वस्व है।

o आज के बदलते परिवेश में आदिवासी विमर्श एवं लेखन विशेष चर्चा का विषय है, इस संबंध में आप क्या कहना चाहेंगे?

⇨ इसे सुखद ही कहना चाहिए कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में आदिवासी समाज की वर्तमान स्थिति पर विचार – अनुविचार होने लगा है। साहित्य और समाज में वनवासी समाज एक लंबे समय तक हाशिए पर रहा है। इस उपेक्षित समाज पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ बड़े स्तर पर संघर्ष चेतना विकसित हो रही है। आदिवासी कवि भी इसी सृजनात्मक कार्य में प्रवृत्त हैं। इनका मानना है कि अभिजात साहित्य के बाहर भी एक बड़ा साहित्य संसार है। आदिवासी समाज के बीच से आदिवासी स्वर को बुलंद करने वाले कवियों में महादेव टोप्पो, रमणिका गुप्ता, हरीराम मीणा, रामदयाल मुंडा, बहरू सोनवणे, लक्ष्मण टोपले, उषा किरण, भुजंग मेश्राम, निर्मला पुतुल, पॉल लिंगदोह, उत्तमराव खेंगडे, वंदना टेटे, ग्रेस तुजूर, उज्ज्वला ज्योति तिग्गा, मोतीलाल, भारत डोगरा, अनुज लुगुन, सहदेव सोरी, शंकरलाल मीणा, सुरेन्द्र कुमार नायक, सरिता सिंह बडाईक, प्रमावल, मुन्नो साह आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं इनकी कविताएँ विभिन्न पत्र – पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इनके कुछ बहुचर्चित काव्य – संग्रह हैं – 'नगाड़े की तरह बजते शब्द', 'अपने घर की तलाश में' (निर्मला पुतुल), 'उल गुलान' (भुजंग मेश्राम), 'नक्षत्र धरा से गगन तक', 'स्वागत नई सदी में' (मोती लाल), 'गोजड और निवडक कविता' (बहरू सोनवणे), 'हाँ चाँद मेरा है' (हरीराम

मीणा), 'डेहरी' (मुन्ना साह) आदि रमणिका गुप्ता द्वारा संपादित 'आदिवासी स्वर और नई शताब्दी' पुस्तक में भी आदिवासी कविताएँ संकलित हैं।

O भारत में आदिवासियों की मुख्य समस्याएँ क्या हैं?

⇨ इसे भारी विडंबना ही कहा जाएगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों के बाद भी आदिवासी समाज उपेक्षित, अभिशाप्त, शोषित एवं अशिक्षित है। देश में वैमानिक एवं तकनीकी विकास होने के बावजूद भी वनवासी समाज अभी तक सामाजिक विकास की मुख्य धारा से जुड़ नहीं पाया है। सरकारों द्वारा प्राकृतिक साधनों का दोहन, जमीन और जंगल से आदिवासियों की बेदखल, उनकी सामुदायिक आर्थिक व्यवस्था का नाश आदि कारणों से आज भी आदिवासी गरीबी, भूख, बेरोजगारी, शोषण, कुपोषण, बीमारी और विस्थापन के शिकार हैं। आदिवासियों का शोषण महाजन, पूँजीपाति, सरकारी कर्मचारी, पुलिस अधिकारी करते आ रहे हैं। उन्हें अपने अधिकार नहीं मिल पाए हैं। जंगलों के काटे जाने से आदिवासियों के जीवन में रोजी – रोटी से जुड़ी रोज़मर्रा की अनेक समस्याएँ आ गई हैं और उनका जीवन संघर्ष बढ़ गया है।

O हमारे देश में आदिवासियों के प्रसार क्षेत्र के विषय में आप क्या कहना चाहेंगे?

⇨ दरअसल, भारतीय सभ्यता में आदिवासी समाज प्रकृति के सान्निध्य में अपना जीवन यापन करता आया है। उन पर शहरी सभ्यता एवं विकास के साधनों का बहुत कम प्रभाव पड़ा है। इसी कारण वे सदैव ही प्रगति के नवीन साधनों के अभावों से ग्रस्त रहे हैं। भारत में झारखंड, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, असम, छत्तीसगढ़, मेघालय, अंदमान – निकोबार, मिजोरम, नागालैंड, कर्नाटक, महाराष्ट्र, राजस्थान, अरूणाचल प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में आदिवासी निवास करते हैं। गोंड, कोरकू , कोल, भील, कोरवा, उरांव, सबरा आदि कुछ ऐसे आदिवासी समूह हैं, जिन्होंने अपनी संस्कृति और साहित्य को सुरक्षित रखा है। इन वनवासियों का स्थान हमारी सांस्कृतिक धरोहर में बहुत ऊँचा है। प्रागैतिहासिक काल से आज तक आदिवासियों के वंशज प्रकृति

की गोद में खेल रहे हैं।

o आदिवासी साहित्य में कई यथार्थवादी उपन्यास भी लिखे गए हैं। इनमें आप किस औपन्यासिक कृति को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं?

⇨ यह सही है कि आदिवासी कथाकारों ने बड़े अच्छे उपन्यासों एवं कहानियों की यथार्थ के धरातल पर रचना की है। इन कथाकारों ने अपने देखे एवं भोगे हुए अनुभव, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं के केन्द्र में उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासों में आदिवासियों के दमित जीवन, दर्द, शोषण, अत्याचार, अन्याय एवं प्रभावों की दास्तान है। आदिवासी जीवन को आवजर बनाकर जो पिछले दिनों उपन्यास लिखे गये हैं, उन में प्रमुख हैं – 'जंगल के गीत' (पीटर पॉल इक्का), 'सपनों वाली वह दुबली लड़की' (शंकर लाल मीणा), 'सीता', मौसी (रमणिका गुप्ता), 'धूनीतले तीर' (हरीराम मीणा), 'काला पादरी' (तेजीन्द्र), 'गगन घटा गहराई' (मनमोहन पाठक), 'काला पहाड़' (भगवान दास मोरवाल), 'सहराना' (पुन्नी सिंह), 'अल्मा कबूतरी' (मैत्रेयी पुष्पा), 'ग्लोबल गाँव का देवता' (रणेंद्र), 'मैं बोरिशा इल्ला' और 'मरंग गोडा नील कंठ हुआ' (महुआ माजी) आदि इन सभी उपन्यासों में जल, जमीन, प्रदूषण, विस्थापन और विकिरण से जूझते हुए आदिवासियों की व्यथा कथाएँ व्यक्त हुई हैं। लेकिन 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में आदिवासियों पर हो रहे शोषण, दोहन, विस्थापन, यूरेनियम विकिरण के कारण बिगड़ते उनके स्वास्थ्य के उभारे गए यथार्थ चित्र दिल दहला देने वाले हैं।

o आदिवासियों और प्रकृति के पारस्परिक संबंध को आप किस तरह रेखांकित करना चाहेंगे?

⇨ आदिकाल से ही आदिवासियों और प्रकृति का अभिन्न संबंध रहा है और आज भी है, यह मैं पहले ही बता चुका हूँ। उनका समूचा जीवन ही प्रकृति से प्रभावित है। वे आज भी आधुनिक सभ्यता से दूर अपने वनों – घाटियों, नदी – नालों, पशु – पक्षियों, देवी – देवताओं, रूढ़ि – संस्कारों तथा रीति – रिवाजों में जीवन – यापन कर रहे हैं। आदिवासी मानव और प्रकृति का निश्चल संबंध है। यह जन – जाति प्रकृति को देवता मानकर

इसी के उपादान के लिए कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। प्रकृति की अनुकंपा पर जीने वाली इस जन – जाति को प्रकृति का भी विशेष आशीर्वाद प्राप्त है। हरे – हरे वृक्ष देखकर आदिवासियों के चेहरे खुशी से खिल उठते हैं। ताले घने मेघ खुशियों की धाराएँ लेकर इनके आंगन में बरसते हैं और इनकी खेती तो हरा – भरा करते हैं। चंद्रमा की शीतल चाँदनी इन्हें मार्ग दिखाती है। आदिवासी लोग अपना सुख – दुःख प्रकृति के साथ ही बाँधते हैं। आदिवासी साहित्य प्रकृति के बिना अपूर्ण है। इस प्रकार प्रकृति और आदिवासी एक अभिन्न समीकरण है।

O आदिवासी साहित्य में भी क्या 'स्त्री विमर्श' चर्चा का विषय है?

⇨ आदिवासी कविताओं, उपन्यासों, कहानिओं, आत्मकथाओं एवं नाटकों में स्त्री विमर्श सहज रूप में आया है। स्त्री की स्वतंत्र पहचान एवं अस्तित्व का जन्म हो रहा है। आदिवासी महिला रचनाकार समझती हैं कि औरतों को भी हक है कि वे साहित्यिक पन्नों पर आएँ।

O स्त्री विमर्श के संदर्भ में आदिवासी स्त्री लेखने और पुरूष लेखन में क्या अंतर है? वर्तमान में बहुत से पुरूष लेखक भी आदिवासी विमर्श को लेकर रचना कर रहे हैं और आदिवासी स्त्रियों के अधिकारों की माँग उठा रहे हैं?

⇨ यह तो पहले भी लिखा जा रहा था। पुरूष आदिवासी स्त्री – पुरूष के लिए लिख रहे थे। स्त्री तब लिख रही थी। आंचलिक कहानीकारों एवं उपन्यासकारों के साथ आदिवासी स्त्री – पुरूष पात्र आए। स्त्री के बिना न कहानी पूरी होती है और ना ही मनुष्य जीवन की कहानी को अंजाम मिलता है। लेकिन यह सच है कि आदिवासी स्त्री रचनाकार जो अपने अनुभव अपनी कलम से लिखेगी, वो पुरूष नहीं लिख पाए और ना लिख पा रहे हैं। आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा का खुलासा करना पुरूष के वश का नहीं हो सकता। गाँधी जी, प्रेमचंद, रेणु, अज्ञेय, जैनेद्र आदि नारी मनोविज्ञान को खोज नहीं पाए। पुरूष लेखकों ने अंदाजे ही लगाए। यह याद रखने वाली बात है कि अनुभव और अनुमान में फर्क होता है। यही फर्क है स्त्री और पुरूष लेखन में अनुभव और अनुमान का।

O आदिवासी साहित्य में स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा किस रूप में होती है?

⇨ कुछ विकास योजनाओं (महिला मंगल योजना, समाज कल्याण योजना) के तहत आदिवासी स्त्री अपने विवाह, संतान उत्पत्ति, शिक्षा, व्यवसाय आदि के प्रति पहले की तुलना में आज अधिक सचेत हुई है। फिर भी, आदिवासी स्त्रियों को जो अधिकार यथार्थ में मिलने चाहिए थे, वो नहीं मिले। अतः अधिकार प्राप्ति के लिए संघर्ष ही एक रास्ता बचता है। आदिवासी स्त्री बाहर की दुनिया को देखकर अपने भीतर समझदारी अंकुरित कर रही है। वह समझती है कि कठोर होकर ही अपने लिए सोचा जाना संभव हो सकेगा। एन.जी.ओ. को भी आदिवासी महिला कल्याण के लिए आगे आना चाहिए।

O क्या आदिवासी समाज विकसित समाज की मुख्य धारा से जुड़ सकेगा?

⇨ क्यों नहीं, पर समय लगेगा। स्त्री अथवा पुरूष की गुलामी तथा गुलामी का आनंद बहुत बड़ा होता है। उसमें सारी सुविधाएँ मिलती हैं। लेकिन जहाँ आपने स्वतंत्रता के लिए कदम बढ़ाए, वही प्रश्न उठने लगते हैं और कलावट शुरू हो जाती है। पाँच हजार साल की गुलामी हमने आँख बंद करके की है तो वह क्या पचास साल में खत्म हो जाएगी। नहीं होगी, लेकिन धीरे – धीरे होगी। पहले विरोध होता है, फिर स्वतंत्रता होती है। कलावट जितनी ज्यादा होगी, छटपटाहट उतनी तेज होगी। इस तरह आदिवासी रचनाकार अपनी बात और अपने अनुभव खुलकर लिखने लगे हैं। उन्होंने सभी बातें कहनी शुरू की हैं, जो सच बाते हैं, कोई झूठ नहीं। आदिवासी समाज की बहुत – सी शिक्षित स्त्रियाँ अपने अनुकूलन से बाहर निकलकर एक चेतना संपन्न नारी के रूप में उपस्थित हो रही हैं। यह वास्तव में एक बदलाव है, एक सुखद परिणाम है, भविष्य की आशा भी है।

O आप आदिवासी साहित्य में किन स्वरों पर बदलाव के संदर्भ देखते हैं?

⇨ यह बदलाव जागृति के रूप में है। संस्कृति में बदलाव, इतिहास को देखकर बदलाव, सामाजिक रूप से बदलाव, राजनैतिक रूप से बदलाव, धार्मिक रूप से बदलाव आदि संदर्भ देखे जा सकते हैं। आदिवासी रचनाकार मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने की कोशिश करता है, वह एक संदेश देता है –

मित्रता का, जुड़ने का। इनका मानना है कि हम विसंगतियों से लड़कर ही शांति स्थापित कर सकते हैं, विसंगतियों को जीवन पर थोप कर शांति स्थापित नहीं की जा सकती। मिसाल के तौर पर मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' की अल्मा मार – काट, लूट – पाट और छीना – झपटी करने वाले समाज से आई है, लेकिन अल्मा ने कहीं भी यह रास्ता अखितयार नहीं किया। वह मित्रता के लिए, शांति के लिए जाती है। वह श्रीराम शास्त्री को मारने का सोचती है, लेकिन नहीं मारती, क्योंकि उसका स्वभाव ऐसा नहीं है। हाँ, जब जिंदगी पर बन जाए तो कुछ भी हो सकता है।

o आदिवासी स्त्रियों की जीवन – शैली, स्वाभाव के बारे में हम जानना चाहेंगे?

⇨ आदिवासी औरतें दिन – रात खेतों – जंगलों में काम करती हैं। उनमें निस्संकोच भाव होता है, क्योंकि वे मेहनत श्रम से जुड़ी हुई हैं। उनमें जीवन में कृत्रिमता, दिखवा और बनावटीपन कतई नहीं हैं। वे सामर्थ्यवान और मजबूत इच्छा शक्ति वाली होती हैं। वे आशंकाओं, संकोच – झिझक, भय की गिरफ्त से बाहर रहती हैं। अपने साहस को दबाकर नहीं रखतीं।

o आपके अनुसार आदिवासी साहित्य में नारी संवेदना किन – किन स्तरों पर व्यक्त हुई है?

⇨ बड़ी सीधी – सी बात है कि जो अनुभव व्यक्तित्व में घुलकर अनुभूति के रूप में बनकर आते हैं, वे ही संवेदना की संज्ञा प्राप्त करते हैं। जब यही प्रक्रिया से जुड़ती है तो नारी संवेदना कहलाती है। वैसे संवेदना प्रत्यक्षीकृत अनुभवों का विशुध्दिकृत रूप है। अनुभव भी बिना किसी आजार के नहीं हो सकते। पहले कुछ तथ्य सामने आते हैं, जिन्हें हर स्त्री – पुरूष देखता है। तथ्य को जब कोई रचनाकार अपने बोल के अनुसार शब्दों में बाँध देता है, तब वही सत्य बन जाता है। सत्य का यही रूप अनुभूति और कुछ तीव्र था सूक्ष्म होकर संवेदना बनता है। संवेदना के लिए आस – पास का परिवेश, उसकी हलचल और उस हलचल में शामिल व्यक्ति की स्थिति, परिस्थिति और मनःस्थिति आधार का काम करती है। संवेदना से युग बोल का नजदीकी का रिश्ता है। रागात्मकत्ता, पीड़ा, वैचारिकता, परिवेश, करूणा,

लोक सम्पृक्ति, मूल्यबोध एवं सौन्दर्यबोध संवेदना के विभिन्न धरातल हैं। इन सभी धरातलों पर निर्मला पुतुल, महादेव टोप्पो, बहरू सोनवणे, अनुज लुगुन, सहदेव सोरी, हरीराम मीणा, सरोज केरकट्टा, सरिता सिंह बड़ाइक, मीरा रामनिवास आदि की कविताओं में नारी संवेदना उच्च सीमा पर व्यक्त हुई है। निर्मला पुतुल की नीचे दी गई काव्य पंक्तियों में व्यक्त आदिवासी स्त्री की दर्द भरी संवेदना काबिले गौर है –

''ये वे लोग हैं जो हमारे ही बिस्तर पर
करते हैं हमारी बस्ती का बलात्कार
और हमारी ही जमीन पर खड़ा होकर पूछते हैं
हमसे हमारी औकात।''

o आदिवासियों के विकास को लेकर सरकार का दृष्टिकोण कहाँ तक व्यावहारिक और सद्परिणामपरक है और इस संबंध में आदिवासी रचनाकारों की क्या प्रतिक्रिया है?

⇨ दरअसल, प्राथमिक आवश्यकताओं की आपूर्ति को ही विकास के एजेंडा के रूप में देखा जाता है। लेकिन भारत के संदर्भ में वास्तविक विकास कार्य उसी को कहा जा सकता है, जिसमें अंतिम व्यक्ति का हित सर्वोपरि रहे। आज सरकार द्वारा जो नीतियाँ बनाई जा रही हैं, उनमें आम आदमी के बजाए पूँजीपतियों एवं प्रभावशाली समूहों के हित का ध्यान रखा जाता है। वर्तमान में आदिवासी रूपी अंतिम व्यक्ति के हित के बजाय उसे समाप्त करने के उद्देश्य से विकास आगे बढ़ रहा है। सच तो यह है कि आदिवासियों के प्रति सरकार का दृष्टिकोण विकास विरोधी है। सरकार की विकासवादी नीतियों के कारण आज आदिवासियों के विस्थापन, अस्तित्व और अस्मिता का संकट उत्पन्न हुआ है। इस प्रतिरोज का स्वर आदिवासी साहित्य के कवियों की कलम से प्रकट हो रहा है। कवि महादेव टोप्पो को इस बात का गहरा दुःख है कि आदिवासियों को गाँव और अपनी जमीन से बेदखल किया जा रहा है। आदिवासियों के जीवन अस्तित्व की चिंता का आर्त्तनाद अनुज लुगुन की कविता में बड़े प्रभावशाली ढंग से उभरा है। रामदयाल मुंडा आदिवासियों के अस्तित्व के विनाश के पीछे विकासवादी

नीतियों को उत्तरदायी ठहराते हैं। इसी प्रकार आलोका, अशोक सिंह और निर्मला पुतुल का मानना है कि विकास के नाम पर आदिवासियों को मिलता कुछ नहीं है। आदिवासी चाहता है, स्वनिर्णय, स्वायत्तता, प्राकृतिक साधनों पर अपना अधिकार, अपनी व्यवस्था, अपनी जीवन शैली और अपनी मातृभाषा के माध्यम से अपना विकास।

O यह सही है कि विश्व के देशों में भी किसी – न – किसी क्षेत्र में आदिवासी रहते हैं। हम जानना चाहेंगे कि विदेशी लेखक भारतीय आदिवासियों के बारे में क्या राय रखते हैं?

⇨ विदेशी लेखक, आमतौर पर जर्मन लेखक, यह जानने में रूचि रखते हैं कि लेखक भारत के किस भाग, संचल क्षेत्र या समुदाय का है। उनके लिए आदिवासियों के बारे में लिखने वाला रचनाकार अधिक महत्वपूर्ण हो उठता है। यदि कोई लेखक हरिजनों, पर्वतवासियों, बनजारों, वनवासियों आदि के बारे में लिखता है तो उनमें उनकी रूचि विशेष रूप से बनती है। तात्पर्य यह है कि जर्मन लेखकों को साहित्य में किसी समुदाय या वर्ग का अथवा किसी जातीय अल्पसंख्याकों का निरूपण अधिक महत्वपूर्ण लगता है। यह बात उन रचनाकारों की ओर सुर्ख संकेत है जो शहरी, नगरीय एवं महानगरीय जिंदगी से बाहर झाँककर भी नहीं देखते। इस तर विदेशी लेखकों का बड़ा वर्ग आदिवासियों के जीवन, साहित्य, संस्कृति, कला, दुःख – दर्द एवं आधुनिक हिन्दी साहित्य में आदिवासी साहित्य अपनी जगह बता रहा है और आदिवासी रचनाकार अपने अधिकारों एवं विकास के प्रति सचेत हुए हैं। हर साहित्य विधा में उनकी अच्छी रचनाएँ आ रही है। दलित विमर्श और नारी विमर्श की तरह आदिवासी विमर्श भी जोर पकड़ रहा है और आदिवासी साहित्य शोध के नए द्वार खुल रहे हैं।

O आदिवासी साहित्यकारों के लिए आपका कोई संदेश?

⇨ आदिवासी साहित्यकार अपने सामने एक विजन और मिशन रखें, जिसमें नई राह का संकेत हो। वे अपने भीतर की ठोस चीज़ एवं सत्य को बाहर निकालें। साहित्यिक दलबंदी से दूर रहें। वे सदैव ध्यान में रखें कि साहित्यकार के दिमाग में लेखन के अंकुर कभी मरते नहीं। उन्हें स्वाद –

पानी नहीं मिला, कोई बात नहीं। लेकिन वे अंकुर वहीं के वहीं रहते हैं और जैसे ही उन्हें मौका मिलता है, पूरी फसल तैयार हो जाती है।

साक्षात्कार – 2

तिथि : 02 / 03 / 2016

आदिवासी अभ्यासक एवं शिक्षा विद् **प्राचार्य डॉ.इसपाक अली** के साथ **डॉ.पंडित बन्ने** की अंतरंग बातचीत

———————————————————————————————

इसपाक अली प्रसिद्ध लेखक समीक्षक, चिंतक, आदिवासी अभ्यासक है। आदिवासी साहित्य, लोकसाहित्य, भारतीय साहित्य, कला, संस्कृति, अनुवाद, हिंदी प्रचार प्रसार, पत्रकारिता आदि में इसपाक अली जी का महत्वपूर्ण योगदान है। आदिवासी साहित्य पर अंतरंग बातचीत हुई, जिसके कुछ महत्वपूर्ण अंश निम्नलिखित है –

O आदिवासी का तात्पर्य क्या है?

⟹ आदिवासी एक ऐसा समुदाय होता है जो एक स्थान विशेष का भूस्वामी है। एक सामान्य भाषा बोलते हो तथा राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से स्वायत्त शासन चला रहे हो।

O आदिवासी की कौनसी समस्या है?

⟹ 1. विस्थापन की समस्या
2. नशाखोरी की समस्या
3. पलायन की समस्या
4. शिक्षा की समस्या
5. नक्सलवाद की समस्या
6. अंधविश्वास की समस्या

O विस्थापन और आदिवासी के बारे में आपकी क्या राय है?

⟹ आदिवासियों की जमीन का सार्वजनिक प्रतिष्ठानों, खदानो, बाँधो, सेचुंरियों आदि के लिए अधिग्रहण हुआ है। सच ही बाहरी लोगों (दिकु) के जमीन अधिग्रहण के फलस्वरूप आदिवासी नये संकट से घिरे है वह है विस्थापन। अर्थात उस घर का एक – बारगी उजड़ जाना जिसे पीढ़ियो की मेहनत से बनाया जाता है। झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, बिहार की एक तिहाई आदिवासी जनसंख्या विस्थापन का दंश झेल रही है।

O आदिवासियों का मुख्य व्यवसाय क्या है?

⟹ 1. पशु पालन मुख्य व्यवसाय है।

2. खेतों में मजदूरी के रूप में कार्य।

3. वर्तमान में पलायन के कारण व्यवसाय में बदलाव आ रहा है।

4. कुछ लोग शिक्षा के कारण जागृत भी हुए हैं।

O भारत में किस राज्य में आदिवासी ज्यादात्तर है?

⟹ 1. झारखण्ड

2. छत्तीसगढ़

3. मध्य प्रदेश

4. उड़ीसा

5. राजस्थान

6. महाराष्ट्र

O भारत सरकार की आदिवासी सुधार योजना कौनसी है?

⟹ आदिवासी क्षेत्र विकास योजना' जिसका पूर्ण रूप से पालन नहीं हो रहा है।

⟹ सामाजिक सुरक्षा योजना।

⟹ बिरसा आवास योजना।

⟹ अत्योदय योजना।

O आदिवासी स्त्री के बारे थोड़ी सी जानकारी दीजिए।

⟹ आदिवासी समाज में स्त्री को परिवार के पालन पोषण के लिए जी – तोड़ मेहनत करनी पड़ती है। पुरूष शराब के नशे में रहता है स्त्री कोयला, तेंदू पत्ता, बीड़ी बनाने में लगी रहती है। अशिक्षा से कोसो दूर है। गर्भावस्था की कगार पर भी आदिवासी महिला को पत्थर तोड़ने व लाते हुए देखा जा सकता है। चिकित्सीय अभाव में कुछ तो चढ़ती जवानी अथवा गर्भावस्था के समय ही दम तोड़ देती है। नृत्य में पारंगत होती है। जादू टोने में विश्वास रखती है।

आधार ग्रंथ –

अ. क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशन / संस्करण
1	अल्मा कबूतरी	मैत्रेयी पुष्पा	राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि.नई दिल्ली प्र.सं.2004
2	जंगल के दावेदार	महाश्वेता देवी	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली सं.2008
3	भूख	महाश्वेता देवी	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली सं.1998
4	धार	संजीव	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली सं.1990
5	पाँव तले की दूब	संजीव	प्रवीण प्रकाशन, दिल्ली
6	जंगल जहाँ शुरू होता है	संजीव	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली सं.2000
7	काला पहाड़	भगवान मोरवाल	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली सं. 1999
8	जंगल के फूल	राजेंद्र अवस्थी	राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली प्र.सं.1969
9	साँप और सीढ़ी	शानी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं.1971
10	सूरज किरण की छाँव	राजेंद्र अवस्थी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं.1994
11	शैलूष	शिवप्रसाद सिंह	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
12	पार	वीरेंद्र जैन	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1994
13	डूब	वीरेंद्र जैन	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली सं.1991
14	जंगल के फूल	राजेंद्र अवस्थी	राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली प्र.सं.1969
15	कब तक पुकारूँ	रांगेय राघव	राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली
16	वनतरी	सुरेशचंद्र श्रीवास्तव	वाणी प्रकाशन, दिल्ली
17	राकेश वत्स	जंगल के आसपास	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
18	मैत्रेयी पुष्पा	झुला नट	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2002
19	मेरी बस्तर की कहानियाँ	मेरून्निसा परवेज	

अ. क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशन / संस्करण
20	आदिभूमि	प्रतिभाराय	
21	आदिवासी अस्मिता की पड़ताल करते साक्षात्कार	रमणिका गुप्ता	स्वराज प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.2012
22	ग्लोबल गाँव के देवता	रणेंद्र	भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, दिल्ली
23	आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी	रमणिका गुप्ता	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
24	नगाड़े की तरह बजते शब्द	निर्मला पुतुल	भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं. 2004
25	अपने घर की तलाश में	निर्मला पुतुल	रमणिका फाउंडेशन, नई दिल्ली, सं.2004
26	आदिवासी विकास यात्रा	रमणिका गुप्ता	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
27	आदिवासी साहित्य विमर्श	गंगा सहाय मीणा	अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा.लि.नई दिल्ली प्र. सं.2014
28	पूर्वोत्तर :आदिवासी सृजन स्वर	रमणिका गुप्ता	नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली, सं.2010
29	सुबह के इंतजार में	हरिराम मीणा	
30	नन्हें सपनों का सुख	सरिता बड़ाइक	
31	सोनामाटी	विवेकीराय	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1983
32	सु – राज	हिमांशु जोशी	भारतीय प्रकाशन, संस्थान, नई दिल्ली, सं.1994
33	विकल्प	डॉ.रामदेव शुक्ल	ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, सं.1988
34	गोपुली गफूरन	शैलेश मटियानी	सरस्वती विहार, दिल्ली, सं.1981
35	भारत बनाम इंडिया	श्रवणकुमार गोस्वामी	सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1983
36	नीलोफर	कृष्णा अग्निहोत्री	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं.1990

संदर्भ ग्रंथ सूची –

अ.क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशन / संस्करण
1	आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य	सं.डॉ.उषा कीर्ति राणावत	अतुल प्रकाशन, कानपुर, सं. 2012
2	आदिवासी साहित्य दशा एवं दिशा	सं.डॉ.एम.फ़ीरोज खान	वाड्.मय बुक्स अलीगढ़ प्र.सं. 2015
3	साहित्य के आईने में आदिवासी विमर्श	सं.एम.फ़ीरोज खान	वाड्.मय बुक्स अलीगढ़ प्र.सं. 2015
4	हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में आदिवासी जनजीवन	डॉ.भरत सगरे	दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, प्र. सं.2014
5	हिंदी में आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ.बी.के. कलासवा	शांति प्रकाशन, रोहतक (हरियाणा)
6	आदिवासी एवं उपेक्षित जन	डॉ.भीमराव पिंगले	विकास प्रकाशन, कानपुर, सं.2000
7	आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी	सं.रमणिका गुप्ता	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
8	आदिवासी समाज और शिक्षा	रामशरण जोशी	ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1996
9	कथाकार शानी	डॉ.अनिल सिंह	सरस्वती प्रकाशन, उल्हासनगर, सं.2002
10	भारत में आदिवासी	पी.आर.नायडू	राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, सं.1997
11	भील जन – जीवन और संस्कृति	डॉ.अशोक पाटिल	मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, सं.1998
12	वीरेंद्र जैन का साहित्य	सं.मनोहर लाल	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं.1997
13	मध्य प्रदेश की जन – जातीय संस्कृति	डॉ.शिवकुमार तिवारी	मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 1991
14	हिंदी उपन्यास : जनवादी परंपरा	सं.कुँवरपाल सिंह	प्रमुख वितरक, दिल्ली प्रकाशन, सं.2004
15	हिंदी उपन्यासों में कामकाजी महिला	अग्रवाल रोहणी	दिनमान प्रकाशन, दिल्ली

अ.क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशन/संस्करण
16	आदिवासी साहित्य यात्रा	रमणिका गुप्ता	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2008
17	आदिवासी कौन?	रमणिका गुप्ता	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2008
18	बंजारा जाति समाज और संस्कृति	जाधव जयवंत	वाणी प्रकाशन, दिल्ली सं.1992
19	भारत की जनजातियाँ	शिवतोष दास	किताब घर, दिल्ली सं.1983
20	बंजारा लोक साहित्य में समाज संस्कृति	मोतीराम राठौड	सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, सं. 1988
21	भारत की आदिवासी महिलाएँ	डॉ.श्यामसिंह शशि	समकालीन प्रकाशन, नई दिल्ली 1983
22	भारतीय जनसंस्कृति	डी.एन.मजूमदार	अपाला प्रकाशन, लखनऊ, सं. 1988
23	मध्यभारत के पहाड़ी इलाके	फोरस्विथ जे.	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2008
24	वनवासी भील और उनकी संस्कृति	श्रीचंद्र जैन	रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, जयपुर सं.1974
25	भारत की जनजातियाँ	शिवतोष दास	किताब घर, दिल्ली
26	हिंदी आँचलिक उपन्यासों की शिल्पविधि	डॉ.जवाहर सिंह	नेशलन प्रकाशन, दिल्ली
27	जनजातीय मिथक	एलविन पेरियर	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2008
28	राजेंद्र अवस्थी का कथा – साहित्य	डॉ.भाऊसाहेब परदेशी	साहित्य निलय प्रा.लि.कानपुर सं. 2000
29	भारत की उपेक्षित लोक संस्कृतियाँ	डॉ.शशिकांत सोनवणे 'सावन'	अभय प्रकाशन, कानपुर प्र.सं. 2014
30	भारत की जनजातियों की संस्कृति	विजय उपाध्याय	म.प्र.हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल (म.प्र.)
31	बंजारा लोकगीत समाज और संस्कृति	डॉ.व्यंकट चव्हाण (नाईक)	वान्या पब्लिकेशन्स्, कानपुर, प्र. सं.2015
32	कथाकार संजीव	डॉ.गिरीश काशिद	शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली

अ.क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशन / संस्करण
33	भारतीय आदिवासियों की सांस्कृतिक, प्रकृति – पूजा और पर्व – त्योहार	लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा	परिधि प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि. सं.2011
34	आदिवासी साहित्य विविध आयाम	सं.रमेश संभाजी कुरे	विकास प्रकाशन, कानपुर, सं. 2013
35	आदिवासी विकास एवं प्रथाएँ	डॉ.प्रकाशचंद्र मेहता	डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली प्र.सं.2016
36	कथा समय सृजन और विमर्श	शशिकला राय	किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2008
37	आन्ध्र प्रदेश की आदिवासी संस्कृति	सुरेश जगन्नाथ	मिलिन्द प्रकाशन, सुल्तान बाजार, हैदराबाद, सं.2010
38	उत्तरशती के उपन्यासों में नगरेत्तर जीवन	डॉ.ईश्वर पवार	विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2006
39	आदिवासी विकास एवं गैर – सरकारी संगठन	उद्यसिंह रजपूत	रावत पब्लिकेशन, जयपुर, सं. 2010
40	आधुनिक हिंदी साहित्य के नए विमर्श	सं.डॉ.बी. जगदीश शेट्टी	अभिषेक प्रकाशन, न्यू मोतीनगर, नई दिल्ली, प्र.सं.2016

अंग्रेजी ग्रंथ –

1. Cultural Sociology – J.L.Gillin and J.P. Gillin
2. Recess and cultures of India – D.N. Mujumdar
3. India's Village – M.N.Srinivas
4. Rural Sociology in India – A.R.Desai
5. Tribal and their culture – Ghosh G.K.

कोश –

1. नालंदा विशाल शब्द सागर – सं.नवलजी
2. हिंदी विश्वकोश खण्ड – 1 – सं.कमलापति त्रिपाठी
3. प्राचीन भारतीय संस्कृति कोश – डॉ.हरदेव बाहरी
4. हिंदी पर्यायवाची कोश – भोलानाथ तिवारी
5. समाजशास्त्र विश्वकोश – हरिकृष्ण रावत
6. प्रामाणिक हिंदी शब्दकोश – सं.रामचंद्र वर्मा

7. हिंदी शब्द सागर – सं.श्यामसुंदर दास
8. संस्कृत हिंदी डिक्शनरी – सं.विलीयम योनियर

पत्र – पत्रिकाएँ –

1. दस्तावेज – 92 जुलाई – सितंबर, 2001
2. आलोचना – जुलाई – सितंबर, 2001
3. युद्धरत आम आदमी – सं.रमणिका गुप्ता, जनवरी, 2014
4. युद्धरत आम आदमी – सं.रमणिका गुप्ता, अक्टूबर – सितंबर, 2013
5. हंस – सं.राजेंद्र यादव, अगस्त, 1999
6. दैनिक भास्कर – भोपाल, 23/11/1996
7. आदिवासी विमर्श – 24 फरवरी, 2010, सं.राणू कदम
8. बयान – सं.महोनदास नैमिशराय, मार्च, 2010
9. आलोचना – अप्रैल – जून, 1984
10. युद्धरत आम आदमी – सं.रमणिका गुप्ता, जनवरी, 2016.
11. राष्ट्रवाणी – सं.प्राचार्य सु.मो.शाह, मई – जून, 2014
12. युद्धरत आम आदमी – सं.रमणिका गुप्ता, नवंबर, 2015
13. अपेक्षा – सं.तेजसिंह, जनवरी – मार्च, 2012